- अध्याय तृतीय -

झोपडपट्टी जनजीवन की समस्याएँ

(1) वेश्या समस्या

(2) पुलिस शोषण की समस्या

(3) विस्थापन की समस्या

(4) अवैध धन्धों की समस्या

(5) अवैध संतान की समस्या

(6) नशापान की समस्या

(7) असाध्य बिमारियों की समस्या

(8) बेकारियों की समस्या

(9) दरिद्रता तथा अभावग्रस्तता की समस्या

(10) अवैध यौन सम्बन्धों की समस्या

निष्कर्ष

000

- अध्याय तृतीय -

" झोपडपट्टी जनजीवन की समस्याएँ "

समाज जीवन के विकास के परिणाम स्वरूप सामाजिक समस्याओं का निर्माण हुआ। इन समस्याओं ने मानवीय जीवन के विकास में बाधा पहुंचायी। पूंजीवादी समाजव्यवस्था ने व्यक्ति और समाज के स्नेहील सम्बन्धों में तणाव उत्पन्न किया। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच के आत्मीय सम्बन्ध ध्वस्त हुए। सामंतवादी समाज रचना में सामान्य जनता की रीढ टूट गई। भारत में प्रविष्ट नयी संस्कृति ने भारतीय समाज - व्यवस्था को झकझोर दिया। सन 1960 के बाद जन-जीवन में काफी परिवर्तन लक्षित हुआ। इस काल के लेखकों ने परिवर्तित भारतीय जनजीवन में सामाजिक समस्याओं की तलाश करना शुरू किया। ग्रामीण जनजीवन, दलित जनजीवन, पहाडी जनजीवन, महानगरीय झोपडपट्टी जनजीवन आदि में विविध विकृतियों से निर्मित समस्याओं का चित्रण किया गया। विकसित महानगर के यांत्रिकीकरण और औद्योगिकरण से कई समस्याओं का निर्माण हुआ। मूल्य-विघटन, पारिवारीक विघटन, विस्थापन, महँगाई, बेकारी, बेगारी, जातीय भेदा-भेद, नर-नारी सम्बन्ध, साम्प्रदायिकता, गुण्डई, वेश्यावृत्ति, तस्करी, गुनहगारी आदि अनेक-सी समस्याओं को महानगरीय जनजीवन में प्रश्रय मिला। महानगरीय उच्छिष्ट पर पली हुई झोपडपट्टियाँ भी इन समस्याओं का अपवाद नही रही।

साठोत्तरी कालखण्ड में बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली, लखनऊ, जमशेदपुर, अहमदाबाद जैसे अनेक महानगरों पर हिन्दी उपन्यास लेखकों ने उपन्यास लिखें, परंतु बहुतांश लेखकों ने महानगरीय मध्यवर्गीय और पूँजीपति वर्ग पर ही अधिक लक्ष केंन्द्रित किया परंतु शैलेश मटियानी, जगदम्बाप्रसाद दीक्षित और भीष्म साहनी ऐसे उपन्यास लेखक रहें, जिन्होंने झोपडपट्टी जनजीवन का चित्रण अपने उपन्यासों के माध्यम से लोगों के सामने रखा और हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में अपने इन उपन्यासों के माध्यम से नया प्रयोग किया। प्रस्तुत अध्याय में हमने दिल्ली और बम्बई के झोपडपट्टी पर आधारित आलोच्य उपन्यासों में चित्रित झोपडपट्टी जनजीवन की समस्याओं का विचार किया है।

सन 1970 के आसपास महानगरों के विकास के साथ-साथ महानगरों की आबादी बढती गई। जनसंख्या के दबाव के साथ-साथ महानगरों के जीवन में कई विकृतियाँ उत्पन्न होने लगी, जिससे महानगरों के स्वास्थ्य में बिगाड आने लगा। महानगरीय रिश्तों और परिवारों में टूटन शुरू

हुई। महानगरों के बढते भेद, व्यक्तियों का आपसी अजनबीपन, आत्मकेन्द्रितता से शिकार, भीड में खोया व्यक्ति सामने आने लगा। मानवी रिश्तों का मशिनीकरण होता गया। अनेकानेक नकाबों को पहनकर आत्मकेन्द्रितता से शिकार व्यक्ति अपनी असलियतता को छिपाने लगा। नौकरी पेशा तथा छोटे-मोटे काम-धन्धे करनेवाले लोगों की भीड महानगरों की ओर बढने लगी। कलाकार और लेखक भी इसके लिए अपवाद नहीं रहें। आवासस्थान की कमियाँ महानगरों में महसूस होने लगी। ग्रामांचल की तरफ से उदर-पूर्ति के बहाने महानगरों की ओर आये हुए व्यक्ति जहाँ भी जगह मिले झोपडियाँ बनाकर रहने लगे। असुविधाओं से युक्त ये झोपडियाँ महानगरों में गंदगी का अड्डा बनी, जिससे महानगरीय जन-जीवन में अनेक-सी समस्याओं का जन्म हुआ। झोपडपट्टियों में भी तरह-तरह की समस्याओं का निर्माण हुआ, दारिद्रय, गुण्डई, अनीति, नशापान, बेकारी, अवैध यौन-संबंध, असाध्य रोग, वेश्या वृत्ति, मूल्यविहीनता, आपसी संघर्ष, गाली-गलौज, लोफर प्रवृत्ति आदि समस्याओं में बढौत्री हुयी। अवैध धन्धें और आतंककारियों का भय बढने लगा। प्रतिकूल परिस्थिति में अटके दुर्दैव के शिकार झोपडपट्टी के लोग उज्ज्वल भविष्य के सपने देखने लगे। इससे भी कई समस्याओं का निर्माण झोपडपट्टी आंचल में हुआ। इन लोगों की आपसी ईर्षा और द्वेष की प्रवृत्ति ने इस जन-जीवन में अनेक-सी समस्याओं का निर्माण किया।

हमने इस लघु-शोध-प्रबंध में शैलेश मटियानी के 'कबूतरखाना' 1960, 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' 1960, 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' 1969, जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' 1974 और भीष्म साहनी के 'बसन्ती' 1980 इन उपन्यासों में स्थित झोपडपट्टी जनजीवन की समस्याओं को तलाशने का प्रयत्न किया है।

रेल लाईन की ढलान पर गंदी वैतरणियों के किनारे खडी इन झुग्गी-झोपडियों में जीवनयापन करनेवाले लोग किस किस्म के होते हैं, वे किस प्रकार का अभिशप्त जीवन जीते हैं, उदरपूर्ति के लिए कौन-कौन से तरीके अपनाते हैं, मजबूरी और लाचारी से पीडित जीवन जीते-जीते भविष्य के उज्ज्वल सपने देखते-देखते मौत के घाट कैसे उतर जाते हैं, झुग्गियों की गंदगी में कीडे-मकौडे की भाँति जीवनयापन कैसे करते हैं, उनके पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्ध कैसे होते हैं, तस्करी, चोर-बजारी, पाकिटमारी की प्रवृत्ति उनमें कैसे पनपती है, उदरपूर्ति के लिए वहाँ की नारियाँ वेश्या-व्यवसाय को कैसे अपनाती हैं आदि सभी के साथ-साथ इन लेखकों ने अपने उपन्यासों में झोपडपट्टी जनजीवन की समस्याओं को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त आलोच्य उपन्यासों में हमें निम्नलिखित समस्याओं के दर्शन होते हैं - वेश्या व्यवसाय की समस्या, पुलिस अत्याचार एवं शोषण की समस्या, अवैध सन्तान की समस्या,

अवैध धन्धों की समस्या, नशा-पान की समस्या, विस्थापन की समस्या, दरिद्रता एवं अभावग्रस्तता की समस्या, असाध्य बिमारियों की समस्या आदि। हिन्दी के झोपडपट्टी पर आधारित उपन्यासों में झोपडपट्टी जनजीवन की समस्याओं पर कहाँ-तक सोचा है इसका विचार हम यहाँ पर करेंगे।

(1) वेश्या व्यवसाय :-

भारतीय पुरूष प्रधान संस्कृति के कारण भारत की औसत नारी आज भी अपने हितों और अधिकारों से वंचित है। आज भारत के महानगरीय, ग्रामांचलिक, पहाडी आँचलिक, झोपडपट्टी आंचलिक आदि में बसी अशिक्षित और अर्धशिक्षित नारी पुरूषों के संरक्षण में पलना अपना हित समझती है, इसी से नारी जीवन में अनेक सी समस्याओं का निर्माण होता है - विधवा नारी, ठगाई गयी नारी, वेश्या नारी, अवैध मातृत्व से अभिशाप्त नारी आदि कई अभिशप्त नारी रूप इस समस्या के फलस्वरूप हमारे सामने आते हैं। डॉ. वाय.बी. घुमाळ के मतानुसार - 'वेश्या-समस्या नारी अस्मिता पर आघात करनेवाली एक भयंकर समस्या है। आर्थिक दुर्बलता, विशिष्ट मानसिकता, पति के साथ हमेशा संघर्ष, पति का दुर्व्यवहार, विवाह पूर्व स्थापित यौन-सम्बन्ध, प्रेमी द्वारा ठगाया जाने से नारी को वेश्यालय तक पहुँचना पडता है। यह एक महानगरीय जीवन की गंभीर समस्या है।'[1]

आज महानगरों में इस व्यवसाय ने अपना पूरा रूप बदल रखा है। परम्परागत वेश्या-व्यवसाय जो उदरपूर्ति के लिए गरीब औरतों द्वारा किया जा रहा था आज यह पूर्ण परिवर्तित हो चुका है, परम्परागत वेश्या-व्यवसाय की जगह विलासितापूर्ण जीवन-यापन करनेवाली स्वच्छन्दी औरतों ने इस व्यवसाय में प्रवेश किया है, जिसे हम 'कॉलगर्ल' कहते हैं। 'महानगरों में पनपनेवाले नवधनिक वर्ग ने अपनी वासनापूर्ति के लिए स्त्री और शराब की शरण ली। इसके परिणाम स्वरूप कभी पैसे के बल पर तो कभी बलपूर्वक नारी को वेश्या बनना पडता है। नारी के इस नये रूप के लिए आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था उत्तरदायी है।'[2]

हिन्दी के झोपडपट्टी पर आधारित उपन्यासों में परम्परागत अभावग्रस्त नारी के उदरपूर्ति के लिए किए जाने वाले व्यवसाय पर ही आलोच्य उपन्यासकारों ने अधिक गहराई से चिंतन किया है।

शैलेश मटियानी के 'कबूतरखाना' 1960 में बम्बई में स्थित कमाठीपुरा में गंगा, कुलसूम, सईदन आदि वेश्याओं की समस्याओं पर गहराई से चिंतन किया है। गणपत रामा की बहन गंगा वेश्या-व्यवसाय करती है। वह वेश्यालय में अपना शरीर-विक्रय करके अपने भाई की रक्षा करना चाहती है, वह गणपत को पत्र में लिखती है - 'तुम्हारा पत्र मिला। जानकर की तुम्हारी हालत सुधर रही है - खुशी हुई। पंद्रह रूपये भेज रही हूँ। अब शायद और भेज न सकूँ।'[3]

लगता है कि गणपत की अभागी बहन को यहाँ मजबूरी से यह व्यवसाय करना पड रहा है। गणपत अपनी बहन से मिलने बम्बई के कमाठीपुरे में आता है और वहाँ की महामाया देखकर उसे खीज उत्पन्न होती है। अपनी बहन का वेश्या-वृत्तिवाला घृणित रूप देखकर वह शर्मिंदा होता है। औरतजाति पर सोचते हुए गणपत कहता है - 'नारी को इतना महान क्यों बनाया भगवान ने कि पुरूष भी उसके प्यार से उऋण न हो सके।'[4]

इस व्यवसाय में प्रविष्ट नारी अपने इस रूप को अपने परिवार वालों से दिखाना पाप समझती है। इसी के परिणाम स्वरूप गणपत को देखते ही गंगा ने आत्महत्या कर ली। इस वेश्यालय की मुखिया कृष्णाबाई गणपत से कहती है - 'क्या रे - भाई होकर बहन की '--' कमाई खाता था। अरे दैवा, इस पोरी ने तो कभी अपनी '--' को ढक्कन नहीं रखा। ---- कमा-कमा के भाई के पेट में भरती रही।'[5]

इन नारियों को इस व्यवसाय के कारण असाध्य बिमारियों से जर्जर होना पडता है। गंगा इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है। गंगा की गर्मी की असाध्य बिमारी पर प्रकाश डालते हुए कृष्णाबाई कहती है -- 'गंगा बेचारी एक महिने से गर्मी की बिमारी से तडप रही है, वैसे भी औसत से ज्यादा ग्राहक पासं लेने से उसका जिस्म टूट गया है।'[6]

गणपत को भी अपनी बहन गंगा का चले जाने से काफी दु:ख होता है। आगे चलकर गणपत भी कुलसूम नामक वेश्या के साथ रहता है। एक दिन वही कुलसूम गणपत को छोडकर अन्य किसी के पास चली जाती है। इससे क्रुध्द होकर गणपत और कुलसूम के ग्राहक व्यक्ति में मारकाट शुरू होती है। स्पष्ट है कि इन औरतों को लेकर वहाँ के व्यक्तियों में संघर्ष भी शुरू होता है।

गणपत के सईदन नामक वेश्या के साथ भी सम्बन्ध आये थे लेकिन उसकी भी मृत्यु असाध्य रोग से हुयी। यहाँ कमला नामक वेश्या की ओर भी संकेत किया है।

शैलेश मटियानी के 'किस्सा नर्बदाबेन गंगूबाई' 1960 में बम्बई में स्थित कोठे पर जीनेवाली औरतों के भावविश्व पर प्रकाश डाला है। इसमें लेखक ने फुटपाथ पर सोनेवालों की जिंदगी और उनकी परेशानियों का चित्रण किया है। इस उपन्यास में बम्बई शहर में कुछ ऐसी औरतें देखने को मिलती हैं, जिन्हें अपने पेट पालन के लिए अपने इच्छा के विरूध्द दुसरे की काम तृप्ति करनी पडती है। रामदुलारे की गर्भवती पत्नी इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है जैसे - 'नगीन भाई सेठ जिन्होनें रामी को पांच रूपये नहीं दिए कि वह आसन्न प्रसवा एक रात तो चैन ले सके तब उस रात भी रामी को रहीमा पठान की बगल में सोना पडा। ---- और जब अबोले

शिशु को रक्तिम साश्रू नयनों से निहार कर रामी ने अपने रक्त चूसे नयन हमेशा के लिए बंद कर दिये थे। उसकी भींची मुठ्ठी खुल गई थी और सरकारी शिक्के सरकार और सशक्त सेठों के मुँह पर थूँख की तरह फुटपाथ पर बिखर गये थे।'

प्रेमकुमारी सिंह के मतानुसार 'जहाँ महलों में रहनेवाली सेठानियों के कामतृप्ति के लिए नौकर रखे जाते थे, वही उस शहर में कुछ औरते ऐसी थी जिन्हें अपने पेट पालन के लिए इच्छा के विरूध्द दूसरे की कामतृप्ति करनी पडती थी।'[7] इस उपन्यास में शैलेश मटियानी ने अभावग्रस्त वेश्याजीवन को प्रकाश में लाने का काम किया है।

शैलेश मटियानी के 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' 1969 में वेश्याजीवन की अनेक-सी समस्याओं पर प्रकाश पडता है। पंडित और वीरेन की बहस से यह स्पष्ट होता है कि लाली नामक औरत फँसाकर इस व्यवसाय में प्रविष्ट हुई थी, उसे मजबूरी से इस व्यवसाय को करना पडता था। वह इस व्यवसाय से मुक्त होना चाहती है। लाली की स्थिति और गति पर प्रकाश डालते हुए पंडित कहता है - 'लाली नामक औरत मिली थी वह कहती थी - 'मलाई रंडी को जीवन नीको लागन्याई नैहो। तिमी उध्दार करऊ - घरन की दासी भई ने रूंला।' (मुझे वेश्या का जीवन बिताना अच्छा नहीं लगता। आप यहाँ से मेरा उध्दार करे मैं आपके चरणों की दासी बनकर रहूंगी।)'[8] लाली अभागन थी। उसे किसी चुडी बेंदीवाले कलाल ने काठमांडू से भगाकर लाया था। उसे तीन सौ रूपये की जरूरत थी। पंडित ने उसे दो सौ रूपए दिये तो बैरन किसी मुसल्टे के साथ सहारनपुर भाग गई। यहाँ शैलेश मटियानी ने धोखा खानेवाली, ठगाई गयी औरत लाली को मजबूरी से इस व्यवसाय में किस प्रकार आना पडा इसपर सोचा है।

बम्बई के फारस रोड के 'सखाराम दत्तात्रय केशव भिकाजी हिंदू होटल' में शारदाबाई नामक एक वेश्या-व्यवसाय करनेवाली औरत आती है, जो वेश्याओं की नायकन कहलायी जाती है। कली हुसैन को देखकर उसे बिजनौर के रामखेलावन की याद आती है वह चंदा की ओर इशारा करके कली हुसैन से कहती है - 'भैया ये सडे ऊसल-पाव खाकर टमाटर से गोरे गाल क्यों बाँसी करता है? एक मस्काबून की प्लेट लेकर चंदा के पास जाकर कहती है - 'किसी नबाब की मनचली कमसीन बेगम तो नहीं उडा लाया बावलें?'[9] ठगायी गई चंदा को कलीहुसैन और शारदाबाई अपने कोठे पर ले जा रहे थे इस समय मोहल्लेभर के लोगों की गिध्द दृष्टि उनपर पड रही थी। चंदा अलीबख्श की भोगासक्ती का शिकार बनती है। कलीहुसैन और चंदा दोनों को अपनी मुँगरापाडावाली झोपडी में ले आता है। यहाँ चंदा की मजबूरी देखने लायक है - 'चंदा दोनों के लिए बरामदे की लालटेन बनी रही, वह चंदा थी, धरति-आकाश दोनों रोशन करती रही, वह

बेबस थी, आँसू पीकर खून बरसाती रही, वह नारी थी दुःख झेलती, सितम सहती रही ---'[10] इसके बाद चंदा को प्रोडयूसर-डायरेक्टर घोष बाबू के जिम्मे सौंपायी गयी। यहाँ हमें ठगाई गई नारी की विवशता के दर्शन होते हैं।

इसी तरह प्रस्तुत उपन्यास में विधवा नूर को भी धोखा देकर इस व्यवसाय में दाखिल किया जाता है। झोपडपट्टी के गुंडा दादा नूर के प्रति आस्था रखता है। तीन-चार बरस पहले शराब बेचनेवाले दादा को नूर मिली कोठे पर। नूर भी धोखा खाकर इस व्यवसाय में प्रविष्ट नारी थी। वेश्यालय में आने के पहले वह तल्लीताल नामक गाँव में वह रेवा नाम से पुकारी जाती थी। युवावस्था में पदार्पण करते ही वह अपने प्रियतम का सपना देख रही थी। रेवा का प्रियकर एक बार घोडे पर सँवार होकर आया, घोडे की लगाम न सँभल सकने के कारण रेवा का प्रियतम मौत का शिकार हुआ। रेवा को माँ नहीं थी, पिताजी भी उसे असमय छोडकर चले गये। वह विधवा बनी। वैधव्य के कारण उसकी हेटी शुरू हुई। वह सिसक-सिसक कर दिन काँटने लगी। इस असाहय हालत में उसने करमसिंह को पाया, करमसिंह ने रेवा को अपने वश किया। करमसिंह रेवा को हलद्वानी तक ले आया और उसे बरेली के मसिदा कलाल के हवाले कर दिया - 'मसिदा जूम्मन और शमशुल्ला के सहारे पिलहाऊस की तीसरी मंजिल तक पहुँची जहाँ युसुफ दादा ने उसका उध्दार कर उसे मुँगरापाडा में आश्रय दिया।'[11]

नूर तथा रेवा को इस घिनौनी दुनिया में दाखिल करने का काम एक ठाकूर ने ही किया परंतु मानवतावादी गुण्डा दादा की मेहरबानी से वह इस नरक से बाहर आयी। शैलेश मटियानी ने यहाँ रेवा को अपनी सहानुभूति के सहारे उभारने की कोशिश की है।

अन्नास्वामी जैसे लोग भी इस बस्ती में जाकर अपनी भोगासक्ती को तृप्त करते हैं। भागूबाई अमरावती से इस रौरव में आकर फँसी थी। इस उपन्यास में हमें भागूबाई का वेश्यागठन या उनके वेश्याव्यवसाय का परिचय मिलता है - 'जो भी छोकरी भागूबाई के यहाँ आती उसे बेटी की तरह रखती, उसके आराम का ध्यान रखती। छोकरी की इच्छा से इन्हें गर्भपात के लिए जडी-बूटी खाने को मजबूर नहीं करती ----- सुविधा के कारण भागूबाई का कुणबा बहुत बडा था। अन्नास्वामी को देखकर उसे अधिक पैसे मिलने की संभावना रहती है। स्वामी को भागूबाई ने गंगा, जमुना, सरस्वती-सी तीनों बेटियों की तरफ इशारा किया। स्वामी के अंदर आते ही विठ्ठल भी आता है वह शांता वेश्या के बारे में पूछता है। उसके पास ग्राहक बैठा है ऐसा कहती है, विठ्ठल देखता है कि वह ग्राहक स्वामी ही है। स्वामी कहता है - 'तुमेरे कू तो साला हम दादा की जमानत का बन्दोबस्त का वास्ते पैसा दिया था? क्या साला हलकट।'[12] स्पष्ट है कि यहाँ ग्राहकों में भी आपसी ईर्षा और द्वेष देखने को मिलता है।

लेखक शैलेश मटियानी ने वीरेन नामक पात्र की उदात्तता के कारण वेश्या नूर का उध्दार किया है और इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है वीरेन कहता है - 'फिर आप यह क्यों सोचती है कि वेश्या कलंकिनी होती है, घृणा की पात्र होती है। मैं नारी के वेश्या रूप को ही उसका श्रेष्ठतम रूप मानता हूँ ---- नारी वस्तुतः साक्षात दुर्गा क्षमाशुध्दाधात्री है ---- वह माँ पहले है, उसे हम अपने हाथों कोठे पर बिठाये, उसे अपना जिस्म बेचने मजबूर कर दे तो शरम नारी को क्यो?'[13]

स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपन्यास में शैलेश मटियानी ने लाली, नूर, चंदा, भागूबाई, शांता, शारदाबाई आदि वेश्याओं का जिक्र करके नूर को इस गंदी दुनिया से बाहर निकालने का सहानुभूतिपूर्वक प्रयत्न किया है।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' - 1974 में दीक्षितजी ने वेश्या जीवन की समस्याओं पर गहराई से चिंतन किया। लेखक ने यहाँ मैनाबाई, बशीरन, हसिना, रोजी, सुभद्रा, नूरन, नैयना, चंद्ररी, मरियम, हिरा, काली लडकी आदि उपेक्षित वेश्या व्यवसाय करनेवाली नारियों की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला है। लेखक ने यहाँ यह बताया है कि झुग्गी-झोपडियों में गंदी बस्तियों में देह विक्रय करनेवाली अनेक औरते रहती हैं। बसस्टॉप पर खडे होकर रात के अंधेरे में ग्राहकों के तलाश में खडी रहती है। ग्राहक न मिलने पर उन्हें भूखा रहना पडता है। उदरपूर्ति के लिए मजबूरी से उन्हें यह व्यवसाय करना पडता है। जैसे-जैसे रात्रियाँ बढने लगती है वैसे-वैसे रंडियाँ कल की चिंता में डूबी हुयी देखने को मिलती है। उनकी इस चिंता पर प्रकाश डालते हुए लेखक कहता है - 'हर सुबह--- हर शाम ---- एक ही सवाल ---- कैसे चले चूल्हा--?'[14]

इन औरतों के ग्राहक कार ड्राइव्हर, कुली, किस्तैये, मजदूर रहते हैं जो उदरपूर्ति के बहाने अपने घर परिवार को छोडकर बम्बई में आकर रहते हैं। वारांगनाओं के इस व्यवसाय के खिलाफ सफेद-पोश व्यक्ति हमेशा के लिए आवाज उठाते हैं। वे कहते हैं - 'ये आवारा औरतें बदबू और अंधेरे ने जन्ती है, दूसरी तरफ से - रोको इन्हें। सरकार --- पुलिस ---- क्या करते है सब। रहना मुश्किल है शरीफ लोगों का।'[15] स्पष्ट है कि पूंजीपति व्यवस्था और झोपडपट्टियों के निवासियों के बीच इससे टकराव की स्थितियाँ आ जाती हैं। इन अमीरों की शिकायत पर पुलिस झुंझला जाते हैं और इनकी बेरहमी से पीटाईयाँ करते है।

इस व्यवसाय को करनेवाली नारियों पर पुलिस आतंक सदा हावी रहता है। शरीफों की शिकायत पर उन्हें पीटा जाता है। पुलिसों के डर से ये नारियाँ दम तोडकर भागती है इसी भागदौड में बशीरन जैसी वारांगना पुलिस की हाथ में लगती है। पुलिसों की मार से बचने के लिए

वह कहती है - 'नही --- नही अब नही --- फिर नही आयेगी इधर। तुम्हारे बच्चों की खैर अल्लाह से दुवा करेगी। रहम।'[16] परंतु सिपाही उसे पकडकर घसीटकर ले जाते हैं, पुलिसों के डर से बाकी भाग जाती है।

ये नारियाँ गाली-गलौज में अधिक माहीर होती हैं - नूरन, बशीरन, हीराबाई, मैनाबाई, शांती, पारबत्ती सभी की सभी नारियाँ गालियाँ देती हैं - '---- क्या पाऊ, भर लेऊ। धन्धें के वास्ते नई मजे के वास्ते, दूसरे का धन्धा मारना--- इनका मुरदा निकाले।'[17] ये नारियाँ नशापान की आदती होती हैं मैनाबाई इसका अच्छा उदाहरण है। वह किस्तैय्या को उधार में शराब मांगते हुए कहती है - 'दे ना रे। एक नौटाक, और दे दे। सच्ची बोलती, कल तेरे कू सारा पैसा दे देऊँगी।'[18] किस्तैय्या मैनाबाई को शबाब उधार में देना नही चाहता परंतु अत्यधिक भिडभिडाहट के बाद वह उसे शराब देता है। लेखक ने यहाँ इन नारियों की नशा-पान की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है।

ये नारियाँ हमेशा के लिए अभावग्रस्त का जीवन जीती है। दारिद्रय उनके जीवन को अभिशाप है। ग्राहक ढूँढने के लिए दर-दर की ठोकरे खाती है। ग्राहक न मिलने पर भूखी रहती है। ग्राहकों की प्राप्ती के लिए इन स्त्रियों में आपसी ईर्षा और द्वेष देखने को मिलता है। मैना और बशीरन के बीच की ईर्षा को देखिए - 'बशीरन की बच्ची ---- कितने खा गयी और कितने खायेगी। एइच हे रंडी --- सारा धन्धा चौपट कर दिया। आगे-आगे नाचती हे हमेशा। मैना, पारबती, नूरन सब बशीरन की उपेक्षा करती है, मैना बशीरन को उद्देशयकर कहती है - 'बशीरन, साली कुत्ती की अवलाद ---- मेरे बात कर, नई आती थी तू दौड-दौडकर इधर? बाबू डिरेवर मेरे कने आता था, तो तू काय को मरती थी बीच में।'[19] बातें बढ जाती है, मैना और बशीरन में हाथा-पायी शुरू होती है नूरन, पारबती, शांती उसे रोकती है। दोनों एक दूसरे के बाल पकडती है और आपसी गालियाँ देती है। इस झगडे में इर्द-गिर्द के लोग इकठ्ठा होते हैं, कुली, किस्तये यह तमाशा देखने में दंग हो जाते हैं।

इन झोपडपट्टी की औरतों को उनके नामर्द पति ही इस व्यवसाय की तरफ मोड लेते हैं। मैना इसका अच्छा उदाहरण है। मैना का पति पोपट कुछ कमाता-धमाता नही, खाली बैठकर खाता है। इसलिए मैना को मजबूरी से यह व्यवसाय करना पडता है।

इन झुग्गी-झोपडियों में वेश्या-व्यवसाय करनेवाली वेश्या औरतें असाध्य बिमारियों से तंग आती हैं। रोजी इन्ही में से एक है जो महारोग से पीडित है। इन स्त्रियों को गर्मी, परमा जैसी बिमारिया जड जाती है। इस बात पर मंगू संकेत करती हुई कहती है - 'यही से आ रही है

बदबू, गरमी हे इसकू --- नही तो परमा। सड रही है।'[20] इस उपन्यास में लेखक ने इस व्यवसाय में काम करनेवाली स्त्रियों की असाध्य बिमारियों पर प्रकाश डाला है।

इन औरतों की जिन्दगी अस्थायी रहती है। उनकी अवैध जगह बसी गयी झोपडियाँ पुलिस द्वारा तोडी जाती है। इस स्थिति में अपना सारा सामान बटोरकर इन्हें या तो फुटपाथ पर गुजर-बसर करना पडता है या किसी अन्य जगह की तलाश करके झोपडियाँ तैयार करनी पडती हैं। अवैध जगहों पर बसायी गयी झोंपडियों पर हमेशा पुलिसों का आतंक छाया रहता है। हाथों में लाठियाँ और सिर पर लोहे की टोपियाँ परिधान करके पुलिस आती हैं। इस पर प्रकाश डालते हुए लेखक कहते हैं - 'तोडे गये छप्पर, बिखरे गये टुकडे समान की गठली, दो महिने का बच्चा, फिर वही दूसरे जगह की तलाश, यहाँ से वहाँ ---- वहाँ से हर जगह। रेल के पटरियों के किनारे ---- दूर----- सागर की काली चट्टानों के ऊपर ---- बनते है झोपडें टूटते चले जाते हैं।'[21]

इस उपन्यास में धोखा खायी हुई कई नयी लडकियाँ भी प्रविष्ट होती है। वह अपना अता-पता नहीं बताती, मजबूरी से इस व्यवसाय में प्रविष्ट होती है। इस व्यवसाय में गर्भवती बनना बदकिस्मती मानी जाती है। मरियम इसका अच्छा उदाहरण है जो किसी से गर्भवती रहती है और बच्चा जनने पर अपनी रोजी-रोटी को पा नहीं सकती। ग्राहकों को पाने के लिए इनमें होड लगी रहती है। नयना और नूरन में इसी प्रकार की होड शुरू है। पारबती, जमीला, नयना अंधियारे में खडी होकर अपने ग्राहकों का इन्तजार करती है। ये नारियाँ कभी-कभी भगाकर इस व्यवसाय में दाखिल की जाती है। इस बस्ती में दाखिल हुई नई छोकरी इसका अच्छा उदाहरण है। मैना उसे अपने गाँव जाने को कहती है तो वह नई छोकरी मैना से कहती है - 'मेरा बाप जान से मार डालेगा मेरे कू ----।'[22] यहाँ ऐसी नारियाँ सामाजिक उपेक्षा का पात्र बनती है। काली लडकी की भी वही स्थिति है। ये वेश्याएँ जेल में बंदी बनाये जाने के बाद अपने हक्कों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक नजर आती हैं। वे पुलिस को गालियाँ दे-देकर अपने पर हुए अन्यायों को विषद करती हैं। ये औरतें अपने ग्राहकों के तलाश में दिन-दहाडे भी सडकों पर घूमती हैं। उनके सामने गिड-गिडाकर कहती हैं - 'साहेब। ओ साहेब। या ना। आओ ना। येता का?'[23] ये शरीफ लोग उन्हें गालियाँ देते हे। इन्हें देखकर सरकार को गालियाँ देते हैं और अपने अपने इमारतों की खिडकियाँ बंद कर लेते हैं।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने अपने उपन्यास 'मुरदाघर' में इन नारियों की वेश्यावृत्ति का कारण आर्थिक शोषण माना है। महानगरों की झुग्गी-झोपडियों में स्थित ये औरतें पेट की आग बुझाने के लिए मजबूरी से यह व्यवसाय करती है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने मैना, रोजी, हसिना,

मरियम, चमेली, नूरन, काली लडकी, नई छोकरी, चंदरी, सुभद्रा आदि वारांगनाओं का चित्रण करके उनकी मजबूरी पर प्रकाश डाला है। इस उपन्यास में लेखक ने इन नारियों की मजबूरी उनका अस्थिर जीवन, उन पर होनेवाले पुलिस अत्याचार, उनमें स्थित गाली-गलौज की प्रवृत्ति, उनमें स्थित आपसी ईर्षा, उनकी असाध्य बिमारियाँ, उनमें स्थित नशापान की आदत, ग्राहकों को पाने की होड, उनके उज्ज्वल भविष्य के सपने आदि अनेक पहलुओं पर गहराई से चिंतन किया है। डॉ. वाय.बी. घुमाळ के मतानुसार - 'वेश्याओं पर लिखे गये उपन्यास में 'मुरदाघर' एक अत्यंत प्रभावपूर्ण रचना है।'[24]

निष्कर्ष :-

आलोच्य उपन्यासों में चित्रित 'वेश्या-समस्या' से यह पता चलता है कि आलोच्य उपन्यास के लेखकों ने परंपरागत वेश्या-व्यवसाय का चित्रण किया है। 'कबूतरखाना' की गंगा, कुलसूम, सईदन 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' की गंगूबाई और रामी, 'बोरावली से बोरीबन्दर तक' की नूर, शारदाकाकी, चंदा, लाली, 'मुरदाघर' की मैना, हसिना, बशीरन, चमेली, नूरन, मरियम, नयना, सुभद्रा, चंदरी आदि कई वेश्या-व्यवसाय करनेवाली औरतों के भाव-विश्व पर इन उपन्यासों में प्रकाश डाला है। आर्थिक अभाव, मजबूरीपूर्ण जिंदगी, पति की गुनहगारी आदि के कारण इन औरतों ने इस व्यवसाय को स्विकार किया है ऐसा लगता है। झुग्गी-झोपडियों में रहनेवाले कई पति भी आर्थिक अभाव से ग्रस्त होकर अपनी पत्नियों को ऐसे नारकीय धंधे में धकेलते हैं। 'मुरदाघर' का मैना का पति पोपट इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है। इन आलोच्य उपन्यासों में इस व्यवसाय में प्रविष्ट कई ऐसी नारियाँ हैं जो ठगाई गयी है अथवा धोखा देकर उन्हें इस व्यवसाय में दाखिल किया गया है। 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' की नूर तथा रेवा। 'मुरदाघर' की नयी लडकी इसके अच्छे उदाहरण हो सकते हैं। ये औरतें झुग्गी-झोपडियों में कीडे-मकौडों की उपेक्षित जिंदगी यापन करती है। सरकार ने सामाजिक स्वास्थ्य रक्षा के लिए ऐसे व्यवसाय पर प्रतिबंधात्मक कानून पारित किया है, फिर भी यह समस्या अभी तक हल नहीं हो सकी है। जब तक समाज की सडी,गली मान्यताओं में परिवर्तन नहीं होगा तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकेगी। पुरूषों की अमानवीय प्रवृत्ति ने ही इस व्यवसाय को बढावा दे दिया। वेश्याओं के विवाह करने के पक्ष में रहकर उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करा देने की आवश्यकता है। 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' की नूर तथा रेवा इस कसौटी पर पूरी उतरती है। शैलेश मटियानी ने नूर के विवाह के माध्यम से इस समस्या का हल ढूंढने का प्रयत्न किया है।

सन 1960 के बाद वेश्या-व्यवसाय पर हिन्दी में 'सुहाग के नुपूर'-1960, 'गलत रास्ता-एक सवाल' - 1960, 'छोटी चंपा-बडी चंपा' - 1961, 'नदी फिर वह चली' - 1969,

'गुनाहों की देवी' - 1961, 'ये कोठेवालियाँ' - 1961, 'कृष्णा-कली' - 1962, 'शहर था - शहर नही था' - 1966, 'सीधी-सच्ची बातें' - 1968 आदि कई उपन्यास लिखे गये जिसमें वेश्या-व्यवसाय, ' ', इस व्यवसाय में प्रविष्ट विविध प्रकार की नारियाँ, उनके विविध प्रकार के सुख-दुःख पाठकों के सामने प्रस्तुत किए हैं।

आज वेश्या-व्यवसाय का आधुनिकीकरण हो गया है। बडे-बडे होटलों, क्लबों, डाकबंगलों, हिल-स्टेशनों में शिक्षित नारियाँ भी अपने रूप का सौदा करने में जुडी हुई है। इन्हें 'कॉलगर्ल' या 'सोसायटी गर्ल' कहकर पुकारते है। पूंजीवादी व्यवस्था इनका निर्माता है। इस लघु-शोध-प्रबंध के आलोच्य उपन्यासों में हमें परंपरागत वेश्या-व्यवसाय का रूप देखने को मिलता है।

(2) पुलिस शोषण की समस्या :-

20 वीं सदी में पुलिस शोषण का एक प्रभावी रूप हमारे सामने उपस्थित होता है। स्वतंत्रतापूर्व और स्वतंत्रता के बाद भी पुलिस महकमे की कुटिल नीति के कारण इस विभाग में आतंक नजर आता है। पुलिस का जानलेवा दमन चक्र, उनके द्वारा पूँजीपतियों से दाँत-काटी-रोटी का संबंध स्थापित करके भ्रष्टाचार करने की प्रवृत्ति, सत्ता और अधिकार के बल पर अनेक नारियों को भोगने की आसक्ती, सामान्य जनता के साथ नृशंसतापूर्ण व्यवहार करने की नीति, दुर्बल नारियों की दीन-दहाडे अस्मत लुटने की प्रवृत्ति, अपने षड्यंत्रों में सामान्य जनता को फँसाने की नीति, पूँजीपति और गाँव के मुखिया की सहायता से असहाय्य लोगों का शोषण करने की नीति आदि रूप में पुलिस शोषण के कई जानलेवा पहलू आज भी हमें देखने को मिलते हैं।

साठोत्तरी कालखंड में महानगरों में बढनेवाली झुंगी-झोपडियों के निवासी को पुलिस आतंक ने तहस-नहस कर डाला। पुलिस के काले कारनामों से झोपडपट्टी जन पूरी तरह पीडित और आतंकित है। इन लोगों की झोपडियाँ तोडना, इनके काले व्यवसायों पर छापा डालना, उदरपूर्ति के लिए छोटे-मोटे अवैध धंधें करनेवाले लोगों को पकडकर बेरहमी के साथ उनकी पीटाई करना, उन्हें जेल में बंदी बनाना, तडीपार करना, बडे-बडे तस्करों की सहायता करना, उदरपूर्ति के लिए वेश्या-व्यवसाय करनेवाली औरतों को बंदी बनाना, उन्हें गालियाँ देना, उनसे रिश्वत लेना, उनकी अस्मत लुटना आदि अवैध करतूतें महानगरों के पुलिस माहौल में दिखायी देती हैं।

झोपडपट्टी जनजीवन का चित्रण करनेवाले हिन्दी के आलोच्य उपन्यास लेखकों ने इस समस्या पर कहाँ तक सोचा है इस पर हम यहाँ विचार करेंगे -

शैलेश मटियानी के 'कबूतरखाना' - 1960 में असहाय्य और गरीब गणपत रामा को पुलिस शोषण का कैसे शिकार होना पडा इसका चित्रण आया है। गणपत रामा जब शराब पीकर

भारती व्यास के शायरी के बारे में टीका-टिप्पणी करता है, जिसमें सच्चाई है। इससे क्रुध्द होकर गायकवाड हवालदार उसे लाफा मारकर 'लॉक-अप' में बन्द कर देता है। पुलिस की इस अत्याचारी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए गणपत रामा कहता है - 'साला, हम सच्चा बोल दिया तो लाफा खाया ऊपर से आक्खी रात भर 'लॉक-अप' में सडेगा - उधर वो शाहीर भारती व्यास लड्डू, समोसा उडाऐंगा।'[25]

शैलेश मटियानी के 'बोरीवली से बोदीबंदर तक' - 1969 में पुलिस आतंक और पुलिस शोषण का चित्रण आया है। उदरपूर्ति के लिए बम्बई में आए हुए बेकार लोगों पर वहाँ की पुलिस पूरी तरह आतंक जमाती है, उन्हें पीटती भी है। लेखक ने यहाँ वीरेन और कुंदस्वामी के माध्यम से इस बात को स्पष्ट किया है। वीरेन का महालक्ष्मी रेस्टारंट में चाय पीते-पीते घडी की ओर ताकना, रात के साडे आठ बज चुकना, सितलादेवी टेम्पल रोड से चलते-चलते ठीक साडे बारह बजना, रामा स्वामी के घर में ठहरने का उसके मन में विचार आना, माहिम स्टेशन पर रात बिताने का उसके द्वारा निश्चय करना, बम्बई की स्पेशल पुलिस का उसके सामने खडा रहना, पुलिसों के डर से फुटपाथों पर सोये हुए लोगों का दौडना, 'पुलिसों द्वारा उनके डंडें से मारना-पीटना'[26] इन घटनाओं से वीरेन को पुलिस आतंक या शोषण का पता चलता है। वीरेन को धमकाते हुए भोसले हवलदार कहता है - 'देखो, इधर अभी नहीं सोना। बम्बई का पुलिस कायदा कडा है, दूसरा पाली का पुलिस फिर आयेगा 'चोपन' में उठा ले जायेगा तो बांदा हो जायेगा।'[27]

भोसले हवालदार मेहरासाहब को हिन्दुस्थान के लावारिस और बेकार लोगों की बम्बई की ओर आने की स्थिति और गति की ओर प्रकाश डालता है। - फुटपाथ पर सोनेवालों को सी.आय.डी. उठाकर ले चलता है तब सिकंदराबाद से आया हुआ कुंदस्वामी पुलिसों के सामने गिडगिडाकर कहता है - 'हम चोर-मवाली नहीं साहिबा। हमकू छोड दो साहिबा।'[28] यहाँ शैलेश मटियानी ने यह दिखाया है कि बम्बई में आनेवाले बेकार लोग जिन्हें झोपडपट्टी भी नसीब नहीं होती है वे फुटपाथ पर ही अपना डेरा डालते है। ऐसे बेगुनहगार लोगों को भी पुलिस शोषण का शिकार होना पडता है। जगह की तंगी के कारण विवाह के पश्चात फुटपाथ पर ही सुहागरात मनानेवाले कलिया - चंदा को भी पुलिस शोषण का शिकार होना पडा। 'दो आने के गजरे लाकर जुम्मा मस्जिद के साये में अपनी बडी बरसाती बिछाकाली ने सुहाग शय्या रची लेकिन हवलदार ने आकर टार्च की रोशनी उसपर केन्द्रित की और गालियाँ देकर हवलदार कहने लगा - 'साला, फुटपाथ पर माँ को ले आया, साला कहीं से भगा के, उडा के लाया है, कल भी ले आना इधर ही, अब तेरे को कोई रोकेगा टोकेगा नहीं, समझा क्या?'[29] पुलिस के इस आतंक के कारण कलिया रो पडा। स्पष्ट है कि निराधार बेकारों के प्रति पुलिस का अमानवीय रवैय्या यहाँ स्पष्ट होता है।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' - 1974 में लेखक ने वेश्याओं पर अत्याचार करनेवाले, झुग्गी-झोपडियों में अवैध धंधें करनेवाले लोगों पर पुलिस अत्याचार कैसे होता है इस पर प्रकाश डाला है। झुग्गी-झोपडियों में रहनेवाले वेश्याओं पर पुलिस का आतंक सदा हावी रहता है। शरीफों की शिकायतों पर हवलदारों के द्वारा वेश्याओं को पीटा जाना, पुलिस के भय से रंडियों का भागते रहना, भागते-भागते उनकी धोतियाँ फट जाना, दौडते-दौडते इन रंडियों का पसीने से तर हो जाना, बढती उम्र के कारण बशीरन का भागदौड में पीछे रह जाना, पुलिस सिपाही द्वारा पकडकर उसकी बेरहमी से पीटाई करना, पुलिस की मार से बचने के लिए बशीरन का गिड-गिडाकर कहना - '---- नही, नही। अब नही। फिर नही आयेगी इधर माफ कर दो। तुम्हारे बच्चों की खैर। अल्लाह से दुवा करेगी। रहम।'[30] मगर सिपाही रहम नही करता उसे घसीट कर ले जाता है। बशीरन खडी होकर रोती है। हवलदार उसे गालियाँ देते हुए कहता है - 'हिच्या आयला, न्या साहेबासमोर (इसकी माँ की ---- ले जाओ साहब के सामने।)'[31] पुलिसों की इस नीति पर नूरन, बशीरन, हीराबाई, मैनाबाई, शांती, पारबती सब पुलिस को गालियाँ देती हैं। महानगरीय पुलिसों के आतंक की शिकार ये वेश्या नारियाँ हमेशा के लिए होती हैं। पुलिस इनके व्यवसाय पर छापा मारती है। रोजी द्वारा पुलिस छापे की सूचना मिलते ही पुलिस के भय से रंडियाँ अंधियारे में भाग जाती हैं। मैना भी रेल लाईन की तरफ भागती है, नूरन भी भागती है, उसका ग्राहक भी भागता है, बशीरन, शांती, पारबती, चमेला सब भाग रहे हैं। हवलदार चिल्ला चिल्लाकर गालियाँ देता हुआ कहता है। पारबती भी पुलिस के हाथों आती है। बेंत की लाठियों का प्रहार उसपर हो रहा है। पकडी गयी मैना हवलदार से कहती है - 'तुम मेरे कू मारना नई। मैं चलती तुमारे साथ। पाव पडती ---- मारना नई मेरे कू।'[32] पुलिस मैना की पीटाई करती हैं। नूरन के साथ जबरी करते है। पुलिस अत्याचार की शिकार नूरन कहती है - 'साला हवलदार लोग ----- बदमाशी किया मेरे साथ ---- मैं बोलेंगी बडे साहब कू। मेरे इधर हाथ लगाया ----- उधर भी।'[33] ये औरतें पुलिसों की वासना का शिकार होती हैं पुलिसों की भ्रष्टाचारी संस्कृति पर प्रकाश डालते हुए मैना कहती है - 'पुलिस का लोग तो रंडी लोग से भी खराब है, पैसा के वास्ते कुछ भी करेगा।'[34] इन वेश्याओं को गाडी में भरकर पुलिस उन्हें हवालात में बंद करती है। हवालात में भी उन्हें समय पर खाना-वाना नही दिया जाता।

उरदपूर्ति के लिए छोटी बडी चोरियाँ करनेवाले जब्बार जैसे गुनहगारों को पुलिस तडीपार कर देती है। जब्बार पुलिस अत्याचार पर प्रकाश डालते हुए रोजी से कहता है - 'उसमें जिस घर में चोरी की थी उस घर का मालिक दारू का धन्धेवाला है, साहब लोगों का दोस्त था। इस

वास्ते जब्बार को उन लोगों ने नहीं छोडा, नालबंदी किया, ऐसा हाथ ऊपर किया और लकडी बाँध दिया और ऐसा पाव में -----। यहाँ पुलिसों ने जब्बार को कैसे तंग किया इसका चित्र स्पष्ट होता है। पुलिस द्वारा इन नारियों पर अत्याचार कैसे होते हैं इस पर प्रकाश डालते हुए चमेली कहती है - 'इधर इंगले नाम का साब होता साला ---- फिर ये मोटे डंडे से मारा, बोला कि कोई कू बोलिंगी तो तेरा जान ले डालूँगा।' चमेली यह भी बताती है कि उसे तीन दिन लॉक-अप में रखा, फिर उसका एक भाई आया, साहब ने उससे 500 सौ रूपये लिए और चमेली को रिहा किया। इस उपन्यास में जब्बार द्वारा पुलिसों की भ्रष्ट नीति पर प्रकाश डाला है। जब्बार कहता है - 'मैं चोर ----- तुम लोग बडा साहुकार आया ----सबसे बडा चोर तुम लोग --- तुम लोग चोर तुम्हारा साहब लोग चोर ---- मिनिस्टर लोग चोर ---- साला तुम सबका पैसा खाता।'[35] लेखक ने यहाँ जब्बार द्वारा पुलिस माहौल का पोल खोलने का प्रयत्न किया है। लगता है आलोच्य उपन्यासों के लेखकों की सहानुभूति इन झोपडपट्टी जनों की ओर है पुलिसों की ओर नहीं। स्पष्ट है कि 'मुरदाघर' में गहराई से पुलिस शोषण की पोल खोलने का प्रयत्न किया है। पुलिसों द्वारा वेश्या बस्ती पर छापा डालना उन्हें डराना, धमकाना, उनकी अस्मत को लूटना, उन्हें पीटना, उन्हें बंदीखाने में बंदी बनवाना उनकी बेरहमी से पीटाई करना, तडीपार किए गये जब्बार को बेरहमी से पीटना आदि के माध्यम से पुलिस शोषण, पुलिस आतंक, पुलिस अत्याचार आदि को स्पष्ट कर दिया है।

भीष्म साहनी के 'बसंती' - 1980 में उपन्यास के प्रारंभ में ही पुलिस आतंक के दर्शन होते हैं। देश की राजधानी दिल्ली में अवैध रूप से बसी बस्ती को तोडने के लिए पुलिस दल का हमला होता है, झोपडियाँ तोडी जाती है, देखते-देखते सब कुछ उजड जाता है। इस पूरी-बस्ती के लोगों को पाँच मील की दूरी पर पहुँचाया जाता है, एमदम खुले मैदान में। झोपडपट्टी निर्मूलन कानून का आश्रय लेकर ऐसी अवैध झुग्गियों पर पुलिस हमेशा अपना आतंक जमाती है। दिल्ली की एक सडक के किनारे बसी इस झोपडपट्टी को तोडते समय का वर्णन देखिए - 'दीवार के पास एक पुलिस का सिपाही खडा, बडी गति के साथ चबुतरा तोड रहा था।' इस बस्ती में विभिन्न प्रांतों के मजदूर रहते थे। मजदूरों की इन बस्तियों पर पुलिस हमेशा आतंक जमाती है।

निष्कर्ष :-

महानगरीय झोपडपट्टी जन जीवन पर आज पूरी तरह से पुलिस शोषण से निर्मित आतंक छाया रहता है। उनमें पुलिसों द्वारा अनेक प्रकार की पीडाएँ बरदाश्त करनी पडती है। पुलिसों के काले कारनामों से पूरा माहौल पीडित रहता है। आलोच्य उपन्यासों में पुलिस शोषण का यथार्थ रूप देखने को मिलता है। पुलिस शासन-व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

पुलिस की कार्यक्षमता, कार्यकुशलता और नैतिकता पर ही शासन-व्यवस्था का मूल्यांकन किया जाता है। शासन व्यवस्था की नीतियों की वाहक पुलिस रहती है, परंतु आज सामाजिक अपराध की प्रवृत्ति पुलिसों में बढती जा रही है। पुलिस की अकार्यक्षमता के कारण व्यवस्था में अनेक अपराधों का निर्माण होता है। इस लघु-शोध-प्रबंध के आलोच्य उपन्यासों द्वारा यह स्पष्ट होता है कि झोपडपट्टी जनजीवन पर पुलिसों का यह दमन चक्र भयावह रूप से जारी है। आलोच्य उपन्यासों में पुलिसों की दबावनीति, झोपडपट्टीवासियों की नाहक पीटाई, इन लोगों को अपराधी मानकर इन्हें बन्दी बनाने का पुलिसी रवैय्या, पुलिस अत्याचार के खिलाफ इन लोगों का संघर्ष, अमानवीयता से इन लोगों की झोपडियाँ तोडने का पुलिसों का प्रयत्न, उनसे रिश्वत लेने की प्रवृत्ति आदि के दर्शन होते हैं। आलोच्य उपन्यासों के लेखकों के मन में पुलिसों के इन कुकृत्यों के प्रति उपेक्षा देखने को मिलती है। इनकी सहानुभूति झोपडपट्टी के लोगों के पक्ष में है। झोपडपट्टियों के बारे में उनकी सहानुभूति होने के कारण पुलिस माहौल की उपेक्षा यहाँ उभरकर आयी है।

(3) विस्थापन की समस्या :-

झोपडपट्टी जनजीवन के सामने हमेशा के लिए विस्थापन की समस्या का भय खडा रहता है। इस समस्या के कारण ये लोग हमेशा अस्थिर रहते है। विकसित महानगर के रेल-लाईन की ढलान पर या रास्ते के किनारे स्थित खाली जगहों पर अवैध रूप में झोपडियाँ बनायी जाती है। ये झोपडियाँ गैर कानूनी बसायी जाती हैं। महानगरों के उच्छिष्ट पर पलनेवाली ये झोपडियाँ महानगरीय सौन्दर्य में विकृतियाँ पैदा करती हैं। सरकारने इसलिए झोपडपट्टी प्रतिबंधक कानून को पारित करके झोपडपट्टी निर्मूलन की शुरूआत की। जहाँ पर भी अवैध रूप में झोपडियाँ खडी हैं उन्हें पुलिसों द्वारा तोडने का प्रस्ताव पारित किया गया फल स्वरूप झोपडपट्टी आंचल में रहनेवाले लोगों में अस्थायी जीवन की समस्या खडी हुई। पुलिस आतंक का भय उन्हें डराता धमकाता रहा। इस लघु-शोध-प्रबंध के उपन्यास 'मुरदाघर' और 'बसंती' में इस समस्या पर सोचा है।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' - 1974 में पुलिसों द्वारा झोपडपट्टी को तोडने के बाद इन लोगों का जीवन अस्थायी बन जाता है। रोजी का झोपडा पुलिसों द्वारा तोडा गया। उसने अपना पूरा सामान बटोरकर फुटपाथ का सहारा लिया। उसके पास एक मैला डिब्बा है, जिसमें उसने अपने प्रेमी की तस्वीर रखी है। रोजी जी-जान से इस तस्वीर की रक्षा करती है। यहाँ अस्थायी जीवन जीनेवाली रोजी के भावविश्व पर प्रकाश पडता है। पुलिसों द्वारा झोपडें तोडे जाते हैं। इस

हालत में ये लोग रेल लाईन की पटरियों के किनारे अपनी जिंदगी बसाते हैं। पुलिसों के द्वारा झोपडे तोडने के बाद मैना भागकर शिवडी गयी थी। लेखक ने झोपडियाँ तोडने के पश्चात् इन लोगों की दुर्गति किस प्रकार होती है इस पर यहाँ सोचा है।

भीष्म साहनी के 'बसंती' 1980 में भी इस समस्या पर सोचा है। दिल्ली में अवैध रूप से बसी बस्ती को पुलिस द्वारा तोडते हुए इस उपन्यास की शुरूआत होती है। पुलिस द्वारा झोपडियाँ तोडी जाती हैं। देखते-देखते सबकुछ चौपट हो जाता है। इस बस्ती की पूरी अबादी को दिल्ली से पाँच मिल दूरी पर खुले मैदान में पहुँचा दी जाती है और इन लोगों के विस्थापन की समस्या का प्रारंभ होता है। इन झुग्गी-झोपडियों में उदरपूर्ति के बहाने, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा आदि विभिन्न प्रांतो से आये हुये लोग बसे। इन बस्तीयों में सामान्य मजदूर रहते थे। 'धोबी, नाई, चाय-पान वाले और तरह-तरह के धन्धें करनेवाले लोग आकर बसे थे।'[36] वे अपने बालबच्चों का पेट पालने के लिए दिल्ली चले आये। उपन्यास के अंत में भी बस्ती तोडने का चित्रण आया है। लेखक इसपर भाष्य करते हुए लिखते है - 'वास्तव में काल का कोई चक्र नहीं चलता इन्सानों की बस्ती तोडने के लिए दूसरे इन्सान ही कालचक्र चलाते है, वही इसे रौंद डालते हैं।'[37]

इस प्रकार अस्थायी जिंदगी यापन करनेवाले इन लोगों की बस्ती उजड जाने के पश्चात वे नाराज होते हैं। इसपर लेखक का भाष्य देखिए - 'सियार और साँप और उल्लू और अन्य जीव-जन्तू तो केवल इस ताक में रहते हैं कि कब कोई बस्ती खदडे दी जाय और वहीं पर जाकर अपना अधिपत्य जमा लें।'[38] टूटनेवाली बस्ती को बचाने के लिए बस्तियों के प्रतिनिधी सरकारी अधिकारियों के पास जाकर कहते हैं - 'मालिक हम राज-मिस्त्री, हम ही घर बनावें और हमारे ही रहने को ठौर नहीं, लोगों को घर जुडावें, और अपना सिर छिपाने के लिए जगह नहीं।'[39]

अंत में ये अस्थायी लोग दु:खी होकर अपने भाग्य को कोसते रहते है। झुग्गी-झोपडियों को गिराते समय हिरा कहता है - 'हाकीम अच्छा मिल जाय यह भी किस्मत की बात है।'[40] इस बस्ती में चौधरी, लंगडा दर्जी, बुलाकी, हिरा, बोधराज और मतिराम जैसे अस्थायी लोग हैं जो अपनी अपनी किस्मत पर रोने का प्रयत्न करते हैं।

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि महानगरों में अवैध रूप में बाँधी गई झुग्गी-झोपडियाँ तोडी जाती है और इन लोगों को विस्थापित किया जाता है। झोपडपट्टी में विविध विकृतियों से युक्त लोग रहते हैं जो महानगरीय जनजीवन में अनेक-सी समस्याओं का निर्माण कर देते हैं। औद्योगीकरण के दुष्परिणाम के परिणाम स्वरूप महानगरों में कल-कारखानों में काम करने

के बहाने ग्रामांचल के लोग आते हैं। शहरों में आकर जहाँ भी रिक्त जगह मिले अपनी झोपडियां खडी कर देते हैं जिससे महानगर में अनार की, गुण्डई, तस्करी, वेश्या व्यवसाय, हातभट्टी आदि का प्रचलन शुरू होता है और मानवीय मूल्यों में गिरावट आ जाती है। इसलिए हमारी सरकार झोपडपट्टी जनवासियों को पक्के मकान बँधवाकर देने का प्रयत्न कर रही है और इन लोगों के विस्थापन की समस्या को हल करना चाहती है। महाराष्ट्र सरकार इसी दिशा में आज महत्वपूर्ण कदम उठा रही है।

(4) अवैध धन्धों की समस्या :-

झोपडपट्टी जनजीवन को नजरअंदाज करने पर यह स्पष्ट पता चलता है कि इन झोपडपट्टियों में विविध प्रांत के, विविध धर्म के, विविध जाति के, विविध प्रवृत्ति के और विविध प्रकार के व्यवसाय करनेवाले लोग रहते हैं। उदरपूर्ति के बहाने ये लोग ग्रामों से महानगरों की तरफ दौडते हैं। वहाँ आवास स्थान की कमी होने के कारण झोपडपट्टियों का निर्माण होता है। ये लोग उदरपूर्ति के लिए विविध तरह के बुरे व्यवसाय करते हैं। वेश्या-व्यवसाय करना, कच्ची शराब बेचना, जुआ खेलना, तस्करी करना, स्ट्टेबाजी खेलना, पाकिटमारी करना, मारकाट करना, गुण्डई करना, छोटी-मोटी चोरियाँ करना आदि उनके अवैध व्यवसाय होते हैं। इन व्यवसायों में वे निम्न स्तर का जीवनयापन करते हैं। अशिक्षा के परिणाम स्वरूप ऐसे धन्धों में वे अधिक दिलचस्पी रखते हैं। आलोच्य हिन्दी के उपन्यासों में इस समस्या पर कहाँ तक सोचा है इस पर हम यहाँ विचार करेंगे -

शैलेश मटियानी के 'कबूतरखाना' - 1960 में परिस्थितियों से मजबूर होकर गणपत रामा की बहन गंगा, कुलसूम, सईदन आदि नारियाँ वेश्या व्यवसाय करती हैं। आर्थिक निर्धनता के कारण उन्हें अपने देह का विक्रय करना पडता है। देह-विक्रय यही एक उनका व्यवसाय बन बैठा है। इस उपन्यास में कच्ची शराब बेचने के व्यवसाय की ओर भी लेखक ने इशारा किया है - 'गणपत रामा रागू दादा की कम्पनी में भरती होकर सांताक्रूझ, कुर्ला, अंधेरी और कालीना से दारू की बोतले लाकर बेचने का काम करता है।'[41] गणपत की बहन गंगूबाई ने देह-विक्रय का व्यवसाय अपनाकर अपने भाई-बहन, माँ-बाप आदि के लिए अपने सर्वस्व को निछावर किया। गणपत रामा बम्बई में फुटपाथ और झोपडपट्टी में स्ट्टेबाजी कैसे चलती है इसपर प्रकाश डालते हुए कहता है - 'अपन को वोच बाबा का 'आकडाँ' दिएले हमेरे पास वो दिवस फक्त एक रूपया होता आठ आना बाबाजी ले गये। आठ आने का अपन आकडा लगा दिया।'

शैलेश मटियानी के 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' - 1960 में गंगूबाई और रामी ऐसी ही दुर्देवी नारियाँ हैं जिन्होंने उदरपूर्ति के लिए देहविक्रय का व्यवसाय अपनाया।

शैलेश मटियानी के 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' - 1969 में परिवार की उदरपूर्ति के लिए पिचन्ना और नागम्मा देहविक्रय का व्यवसाय करती है। लाली भी इस व्यवसाय को उदरपूर्ति का शिकार होकर अपनाती है। एक मजदूर का बेटा अत्यधिक दारिद्रय के कारण शराब-वहन करने का काम करता है। इन लोगों को मजबूरी से अवैध धन्धों की तरफ कैसे मुडना पडता है इसका चित्रण एक मजदूर करते हुए कहता है - 'मेरा बडा बेटा जम्सूदादा के छोकरे के साथ दारू ले जाते समय पकडा गया था। काला चौकी के लाकप में पडा है। उसकी जमानत का बन्दोबस्त करना है।'[42] इससे स्पष्ट पता लगता है कि झोपडपट्टी के इन मजदूरों के छोटे-बडे बच्चों को शराब वहन करने का व्यवसाय करना पडता है। शैलेश मटियानी के प्रस्तुत उपन्यास में ये लोग गुण्डई और चोरी करके अपनी उदरपूर्ति करते है। दूध बेचनेवाले भैया अपने पैसे की चोरी न हो पाये, इसलिए वह अपने मुँह में पैसे रखता है, परन्तु इस माहौल का गुण्डा दादा उसके पैसे इस तरह निकालता है, जिसे देखकर वीरेन को आश्चर्य होता है। वीरेन को अपने पडौसी के चौर्य-कर्म पर विस्मय होता है। उसके मुँह से हलकी-सी चीख निकलते-निकलते रह जाती है। इस अवसर पर यह गुंडादादा वीरेन को चाकू दिखाकर धमकाते हुए कहता है - 'सी! सी! चोप! साला मुखबिरी करेगा? चीर डालूँगा, फाड डालूँगा, गपचुप चल मेरे साथ।'[43] वह दादा वीरेन को कत्ल करने का डर दिखाता है। दादा द्वारा लूटा गया भैया कहता है - 'का कही साहब अचरज का बात हुई गया। हम साला सोचा रहा, कमर से कोई निमक हराम चोट्टा साला ब्लेड मारकर खिसका लिए पर ससुरा हमारे मुँह को उल्लू बना के चल दिया। साला अधरम है, साहब।'[44] स्पष्ट है कि ये लोग चोरी करने में माहीर होते हैं। अन्य लोग ऐसे दादाओं से डरते हैं और उन्हें चाय-पान, हुक्का-पानी मुफत में देते हैं। हसन ईरानी और रिटायर्ड पंडा इसके अच्छे उदाहरण है जो दादा की आवभगत करते हैं। इन बस्तियों में दादा का साथ निभानेवाले विठ्ठल जैसे लोग रहते हैं जो गांधी टोपी और खद्दर की सफेद वर्दी में आत्मा के सारे कलुष को छुपाये रखकर सौ से ऊपर दारू सप्लाई का व्यवसाय करते हैं। इस झोपडपट्टी का दादा जुआ खेलता है, दारू बेचता है और गुण्डई करके लोगों की कत्ले भी करता है। इस तरह बोरीवली से बोरीबन्दर तक उपन्यास में अवैध रूप से चलनेवाले धन्धों पर संकेत किया है।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' - 1974 में लेखक ने विस्तार के साथ इन लोगों के अवैध धन्धों पर प्रकाश डाला है। इस बस्ती में उदरपूर्ति के लिए वेश्या-व्यवसाय करनेवाली

नारियाँ मैना, हसिना, रोजी, नयना, बशीरन, मरियम, चंदरी, सुभद्रा, नूरन, हीरा आदि का चित्रण यथार्थता के साथ किया है। ये स्त्रियाँ पुलिस अत्याचार से पीडित रहती हैं। उनमें आपस में ईर्षा रहती है। वे आपस में झगडती हैं। अवैध सम्बन्ध रखती है। अस्थायी जीवन यापन करती है, दारिद्रय से पीडित रहती है, गंदगी में पडकर अपने जिस्म का सौदा करती है। ग्राहकों के लिए आपस में लडती-झगडती है। कुली, मजदूर, टैक्सीवाले, किस्तैया उनके ग्राहक होते हैं। लेखक ने इन नारियों के परंपरागत वेश्या-व्यवसाय पर प्रकाश डाला है।

इन बस्तियों में बसनेवाले लोग कच्ची शराब बेचने का काम करते हैं। किस्तैया मोटे पाईप के आड में बैठकर कच्ची शराब बेचने का काम करता है। उधार पर शराब माँगनेवाली मैना को गालियाँ देकर कहता है - '---- मादरचोद। तेरे कू कौन बोला इधर आने के वास्ते।'[45] वह मैना को एक नौटाक देकर भगा देता है।

झोपडपट्टियों में रात्री के अंधियारे में अवैध धंधें चलते है - 'पूल की सिढीयों के पास जमघट ---- नम्बर खेलने वालों का।'[46] स्पष्ट है कि यहाँ जुआ तथा सट्टा भी खेला जाता है। कई लोग शराब बेचने का धन्धा भी करते हैं, ये लोग ताश खेलते हैं, जुगार खेलते हैं। इस सट्टे पर पैसे चढाने के लिए अपनी पत्नियों से झगडकर पैसा लेते हैं, पोपट इसका अच्छा उदाहरण है वह अपनी पत्नी मैना से कहता है - 'ओपन का दस और क्लोज का पाँच। लडी में पाँच का पाँच सौ ---- दस का हजार। इतना नुकसान करेगी क्या मेरा।'[47] पोपट जोर-जबरदस्ती मैना से पैसे लेता है। ये लोग चोरियाँ करते हैं। जब्बार इसका अच्छा उदाहरण है। जब्बार किसी शराबी के घर चोरी करता है तो उसे बंदी बनाकर उसकी खूब पिटाई की जाती है। तडीपार किया गया जब्बार रोजी से कहता है - 'चोरियाँ करता मैं ---- तडीपार किया---- हान ना --- मैं तो साफ बोलता ---- जब किया तो शरम काय को।'[48] गोरेगाव के एक मकान में घुसकर उन्होंने अपने परिवार की उदरपूर्ति के लिए चोरी की थी। उदरपूर्ति के लिए चोरियाँ करना इनकी आदत बन गयी है। इस चोरी के इल्जाम पर उन्हें तडीपार किया जाता है। काली लडकी को भी चोरी के इल्जाम में पुलिसों ने पकड लिया है। काली लडकी लैला से कहती है - 'तुम चोरी बात पूछता लैलाबाई आपुन क्या बडा चोरी करेगा। इधर उधर कुछ छोटा-मोटा मिल गया तो ले लिया। हुई का शर्त ---- लेंगा---- बनियान---- बाहर किधर भी सूखता होंगा मौका मिलेगा तो आपुन उठा लेंगा---- ले जाके देंगा बाबू भाई को ---- एक टैम का खाना भी मिला तो मौत।'[49] इस तरह उदरपूर्ति के लिए ये लोग छोटी-मोटी चोरियाँ करते हैं, कभी-कभी भीख भी माँगते हैं। स्पष्ट है कि ये लोग मजबूरी से इस व्यवसाय में आते हैं।

ये लोग तस्करी का भी व्यवसाय करते हैं। बडे-बडे तस्करों से सम्बन्ध स्थापित कर, उनके माल को वहन करने का काम करते हैं। कम परिश्रम में तस्करी का व्यवसाय करते हैं। अमीर बनने का सपना देखनेवाला पोपट रेलगाडी के नीचे कुचलकर मर जाता है।

इस तरह झुग्गी-झोपडी में रहनेवाले लोग मजदूरी करते हैं, तस्करी करते हैं, छोटी-मोटी चारियाँ करते हैं, शराब बेचते हैं, स्ट्टेबाजी और जुआ भी खेलते हैं। गुण्डई करके खून-खराबा करते हैं। लेखक ने मुरदाघर में इन लोगों के अवैध धन्धों की तरफ विस्तार से चिंतन किया है।

भीष्म साहनी के 'बसन्ती' - 1980 में दिल्ली में स्थित झुग्गी-झोपडियों में रहनेवाले लोगों के छोटे-मोटे पारंपारिक व्यवसाय का चित्रण किया है। परन्तु अवैध धन्धों की तरफ अधिक नहीं सोचा है। इस बस्ती में रहनेवाले लोग मजदूरी करते है - नाई, धोबी, चाय-पानवाले अपने परंपरागत व्यवसाय करते हैं। एक जगह सिर्फ, अभावग्रस्त बसन्ती पर श्यामा बीबी द्वारा मोजे और टीन के डिब्बे चुराने का इल्जाम लगवाया है। 'बसन्ती' उपन्यास में सुधारित और विकसित झुग्गी-झोपडी के दर्शन होते हैं। यह श्रमिकों की बस्ती होने के नाते यहाँ अधिक अवैध धन्धों के चित्रण नहीं मिलते।

निष्कर्ष :-

आलोच्य उपन्यास के लेखकों ने शहर के उच्छिष्ट पर पलनेवाली झोपडपट्टी जैसी नारकीय दुनिया में चलनेवाले अवैध धन्धों की ओर गहराई से सोचने का प्रयत्न किया है। इस घिनौनी दुनिया में कच्ची शराब बेचना वेश्या-व्यवसाय करना, स्ट्टेबाजी करना, जुआ खेलना, चोरियाँ करना, तस्करी करना, गुण्डई करना, छोटे-मोटे पारंपारिक व्यवसाय करना आदि का चित्रण किया गया है। इस प्रकार के चित्रण में आलोच्य लेखकों ने कहीं-कहीं पर गहराई से अवैध धन्धों का चित्रण किया है तो कहीं-कहीं पर केवल संकेत भर से काम चलाया है बडे-बडे गुण्डा लोगों के सान्निध्य में रहकर झोपडपट्टी के सामान्य लोग उनके लिए अवैध धन्धे करते हैं। पोपट और विठ्ठल इसके अच्छे उदाहरण हैं। ऐसे अवैध व्यवसायों के लिए इन लोगों का दारिद्रय और मजबूरी ही कारण है।

(5) **अवैध संतान की समस्या :-**

'विवाहबाहय यौन सम्बन्धों के फलस्वरूप होनेवाली संतान अवैध सन्तान कहलायी जाती है। अवैध सन्तान की उत्पात्ति विवाह संस्था और परिवार संस्था पर गहरी चोट है। समाज अवैध संतान की ओर कठोर दृष्टि से देखता है। कुमारी माता की संतान, विधवा नारी तथा विवाहीत नारी

की पर-पुरूष से उत्पन्न संतान, वेश्या या वेश्याकन्या से उत्पन्न संतान अवैध संतान कहलायी जाती है। अवैध संतान का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, विवाह और समाज में सम्मानीत स्थान आदि के बारे में अत्यंत जटिल समस्या उत्पन्न होती है। इस हालत में मानवीय सहानुभूति से ओत-प्रोत लेखकों का ध्यान अवैध संतान के भविष्य की ओर जाना स्वाभाविक है। समाजोन्मुख लेखक अवैध संतान की ओर मानवतावादी दृष्टि से देखता है। व्यक्तिवादी लेखक समाज के अन्याय को देखकर विद्रोह का नारा लगाता है।'[50]

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' - 1981 में लेखक ने इस समस्या पर गहराई से चिंतन किया है। मरियम जैसी वेश्या गर्भवती बनती है। इस गर्भधारणा से उसकी तकदीर ही फूट जाती है, वह कहती है - 'कब किसका आया मालूम नहीं पडा।'[51] रंडियों पर गर्भ रहने पर अवैध संतान की निर्मिती होती है। वह बच्चा किससे उत्पन्न हुआ है इसका पता उन्हें नहीं होता है। मरियम का मातृत्व इसी ढंग का होता है - एक पाईप के अंदर वह प्रसव वेदना से पीडित कराह रही है। इसकी इस कराह को सुनकर शराबी कहते हैं - 'वो नई क्या मरियम ---- रंडी। बच्चा हो रया है उसकूँ ---- यह किसका बच्चा है इसका पता नहीं।'[52] जमीला द्वारा मरियम का हाल पूछने पर मरियम कहती है - 'अरे मेरे कू बचा ले अल्ला। मैं मरी ---- भडवी का ---- हाये। डाल ले चला गया पेट में। साला।'[53] अवैध संतान और अवैध मातृत्व का बोझ वहन करनेवाली मरियम अल्ला का नाम रटती है। वेश्याओं को बच्चा होना यह उनके लिए दयनीय और पीडाजन्य बात है ताकि इसकी परवरिश में उनका व्यवसाय डूब जाता है।

एक काले बच्चे को पाईप में जनम देते हुए मरियम उसे गालियाँ बकते हुए कहती है - 'किसी काले मजदूर की औलाद काय कू आया तू? मेरी जिंदगी हराम करने कू? कौन बुलाया था तेरे कू, तेरे कू देखूँ कि धन्धे कू जावूं।' स्पष्ट है कि मरियम को यह सन्तान प्राप्ति आपत्तिजनक लगती है। उसे दुध पिलाने की अपेक्षा उसके मर जाने की चाह प्रकट करती है। वह इस बच्चे का जिंदा रहना योग्य नहीं मानती। ताकि यह बच्चा उसकी रोजी-रोटी पर लानत ला रहा है। भूख से तिलमिला उठी मरियम कहती है - 'अन्धा है अल्लाह भी। रंडी का धन्धा करनेवाली को दे दिया बच्चा।'[54] ऊपर से अपने बच्चों को गालियाँ देनेवाली अंदर ही अंदर वात्सल्य से रसभरी हो रही है, मरियम। अन्य औरतें इस बच्चे को देखकर वात्सल्य-रस से सिक्त हो गयी हैं। इस तरह लेखक ने यहाँ 'मुरदाघर' में अवैध मातृत्व और अवैध सन्तान की समस्या पर प्रकाश डाला है। डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर के मतानुसार - 'झोपडपट्टी की इन वारांगनाओं का जीवन यथार्थ अन्य किसी भाषा में प्रकट करना असम्भव है।'[55]

निष्कर्ष :-

हिन्दी में 'पतिता की साधना', 'त्यागपत्र', 'प्रेत और छाया', 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'नदी के द्वीप', 'कंकाल' आदि उपन्यासों में विधवा माता, परित्यक्ता माता, कुँवारी माता आदि नारियों के अवैध संतानों का चित्रण मिलता है, परंतु जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने 'मुरदाघर' में इससे अलग सोचकर वेश्याओं से निर्मित अवैध संतान पर चिंतन किया है और अपनी मानवतावादी दृष्टि का परिचय दिया है। लेखक ने मरियम के माध्यम से अवैध संतान के भविष्य की ओर निराशावादी दृष्टि से देखा है। इस समस्या पर लेखक ने प्रगतिवादी दृष्टिकोन से विचार करते ऐसे संतानों पर चिंता प्रकट की है और अवैध संतान की रक्षा करने के लिए कटिबध्द वेश्या-नारियों के दर्शन हमें नहीं करवाये हैं। अन्य झोपडपट्टी आंचल पर आधारित उपन्यासों में इस समस्या पर नहीं सोचा गया है इसका कारण यही हो सकता है कि आज संतति प्रतिबंधक साधनों की प्रचुरता से इस समस्या का हल हो चुका है। इतना ही नहीं सरकार ने गर्भपात को कानूनन स्वीकृति दी है, इसलिए शायद इस समस्या का उल्लेख अन्य उपन्यासों में नहीं आया है।

(6) नशा-पान की समस्या :-

झोपडपट्टी जनजीवन में आज चारों तरफ नशापान का बोलबाला देखने को मिलता है। ये लोग दिनभर काम करते हैं और रात्री में नशैले पदार्थों का सेवन करके शांति पाते हैं। शराब, अफीम, गांजा, ब्राऊन शुगर आदि नशैले पदार्थों का सेवन करके ये लोग अपने सभी दुःखों को भुलने का प्रयत्न करते हैं। फुटपाथ की अपाहिज जिंदगी का दर्द मानवीय घृणा आदि से कुछ क्षणों के लिए क्यों न हो छुटकारा पाना चाहते हैं। आलोच्य उपन्यास के लेखकों ने नशापान की इन लोगों की प्रवृत्ति पर गहराई से चिंतन किया है -

शैलेश मटियानी के 'कबूतरखाना' - 1960 में उदरपूर्ति के लिए सातारा से बम्बई में आया हुआ गणपत रामा शराबी बनता है। अपने गम को भुलने के लिए वह शराब पिता है। वह कहता है - 'हम दारू को और दारू हमारे गम को और गम हमारे जिंदगी को पीता है।'[56] गणपतरामा इस उपन्यास का नायक है और इस उपन्यास की शुरूआत उसके शराब से सन्न हिचकियों के साथ होती है जैसे - 'नवरा ---- उक्---- मवाली---- उक्----उक्---- मिलेला उक्।'[57] माहवार पंद्रह रूपये तनख्वाह पानेवाला गणपत रामा हवलदार लोगों को कोसता है और शराब की नशा में कहता है - '---- पिया है---- तो साला किसी का आई को '----' ये पैसा लाया क्या? --- दिन भर सेठ लोग के घर में भाँडी घसता है ---- साला अपन घाटी मराठी रामा लोग ---- कोरी जिंदगी है।'[58] गणपतरामा शराब की नशा में अपनी सारी तहकीकात विषद करता है। वह शराब की नशा में भारती व्यास की पोल खोलता है, शराब की नशा में वेश्या-गमन करता है और असाध्य रोग से पीडित होता है।

शैलेश मटियानी के 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' - 1969 में मुंगरापाडा की झोपडपट्टी में स्थित नशापान पर प्रकाश डाला है। इस उपन्यास में बर्तन माँजकर उदरपूर्ति करनेवाले रामा लोगों के नशापान पर प्रकाश डाला है - 'दादा इन बिल्डीगों की हिस्टरी उन रामा लोगों से पूछता है जो रात के बर्तन घिसने के बाद दारू-देवी की वंदना को दादा के झोपडे पर आ जाते है।'[59] प्रस्तुत उपन्यास का अन्ना स्वामी भी शराब का आदती है जो अपनी बहन की देह-विक्रय से प्राप्त पैसे की शराब पीता है। इस उपन्यास का पात्र विठ्ठल भी शराब का आदती है। जैसे - 'विठ्ठल को गुदगुदी-सी हुई उसने पुराने कोट की तिलस्मी जेब से निकालकर दारू की छोटी शिशी ओठों से लगा ली।'[60] यहाँ विठ्ठल की शराबपान की प्रवृत्ति नजर आती है।

इस प्रकार इस उपन्यास में नशापान का चित्रण लेखक ने किया है।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' - 1974 में नशापान के आदती मैनाबाई पर प्रकाश डाला है। वह किस्तैय्या से नौटाक शराब पीकर अपने ग्राहकों की खोज में रहती है। वह कुलीयों से उद्देशकर कहती है - 'अरे कोई बोल रे इसकू एक नौटाक और दे देगा, बहुत तलब लगा मेरे कू।'[61] मैना की भाँति अन्य रंडियाँ भी शराब पान करती हैं। इन रंडी नारियों को नशा-पान की आदत होती है, 'पारबती कबाब खाकर आती है, शराब की नशा में लड.खडाती है, सिगरेट पीती है।'[62] झोपडपट्टी के छोटे-छोटे बच्चे भी बीडियाँ पीते हैं। इसपर प्रकाश डालते हुए पोपट कहता है - 'ये राजू, साला किधर है बीडी? हर रोज पी जाता साला ----।'[63] पोपट का बेटा राजू बीडी पीने का आदती है इसका पता यहाँ चलता है। इसतरह इस उपन्यास में जब्बार, पोपट जैसे लोग भी शराब के आदती हे इसका पता चलता है।

भीष्म साहनी के 'बसन्ती' - 1980 में झुग्गी-झोपडी में बसनेवाले 'लौंडो-लघाडों में बढनेवाली शराब-खोरी और आवारा गर्दी पर प्रकाश डाला गया है।'[64]

निष्कर्ष :-

स्पष्ट है कि आलोच्य उपन्यासों में कच्ची शराब की नशा का ही अधिक चित्रण हो गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि झुग्गी-झोपडी में रहनेवाले लोग सर्वहारा मजबूर होते हैं अतः अन्य नशैले पदार्थों का सेवन करना उन्हें आर्थिकता की दृष्टि से उचित नहीं लगता, इसलिए वे अपने गम को भूलने के लिए कच्ची शराब ही पीते हैं।

(7) असाध्य बिमारियों की समस्या :-

झुग्गी-झोपडियों में रहनेवाले लोग अभावग्रस्त जीवन जीते हैं, गंदगी में रहते हैं, अवैध धंधे करते हैं, शराब-पान करते हैं, नशा-पान के आदती होते हैं, वेश्या-गमन करते हैं, परिणामस्वरूप असाध्य बिमारियों से पीडित होते हैं। इन बिमारियों को पाटने के लिए उनके पास पैसा न होने के कारण वे इसी असाध्य बिमारी में मौत के शिकार बन जाते हैं।

शैलेश मटियानी के 'कबूतरखाना' - 1960 में गणपत रामा की बहन गंगू अपने परिवार के लिए रंडी का व्यवसाय करती है। इस व्यवसाय को करते-करते उसे गर्मी की असाध्य बिमारी होती है। इस असाध्य रोग से जर्जर गंगू का वर्णन देखिए - 'गंगा बेचारी एक महिने से गर्मी से तडप रही है ---- कील की तरह चटकने के दिन थे उसके बासी फूल सी सडी जा रही है।'[65] गणपत रामा की भी वही स्थिति है उसे भी वेश्या-गमन के कारण असाध्य रोगों का शिकार होना पडता है। इस उपन्यास की वेश्या-नारी सईदन भी इस रोग से पीडित होकर उसका अंत होता है।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' - 1994 में असाध्य बिमारियों पर प्रकाश डाला है। इस व्यवसाय को करते-करते रोजी कोढ रोग से ग्रस्त बनती है। उसके हाथ-पाँव झडने लगते हैं। 'पहले रोजी के उँगलियों में जख्म हुआ। फिर बहुत से जख्म होने लगे----- फिर होते चले गये ---- जख्म----- चिल्लाने लगी रंडियाँ----- ये --- इधर नई ---- उधर ----- दूर बैठ।'।[66] यहाँ रोजी की हेटी, उपेक्षा तथा हिकारत देखने को मिलती है। वेश्या-व्यवसाय करनेवाली चमेली जब हवालात में बंद की जाती है तो उसे दस्त की बिमारी होती है, जिससे वह मृतप्राय पडी हुई थी। जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने विश्व में संचार करनेवाली नारियाँ हमेशा असाध्य रोगों की शिकार बनती है इस पर प्रकाश डाला है। गर्मी, परमा जैसी बिमारियाँ उनका पिछा नहीं छोडती। गंगू इस पर संकेत करती हुई कहती है - 'यही से आ रही है बदबू, गर्मी है इसकू ----- नहीं तो परमा। सड रही है।'[67]

निष्कर्ष :-

आलोच्य उपन्यास 'मुरदाघर' और 'कबूतरखाना' इन दो उपन्यासों में इस समस्या पर सोचा है परंतु गहराई से सहानुभूति के साथ इस समस्या पर नहीं सोचा है। इसका कारण यह हो सकता है कि इस गंदगी-भरे रोगों से आलोच्य उपन्यासकारों को घीन पैदा होती होगी। परिणाम स्वरूप उन्होंने विस्तार से नहीं सोचा है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि बडे-बडे महानगरों में प्रज्ञावंत डॉक्टरों की अधिकता होने के कारण इस बिमारी का प्रादुर्भाव अधिक मात्रा में नहीं होता होगा।

(8) बेकारी की समस्या :-

बेकारी की समस्या आज दिन-ब-दिन बढती जा रही है। बेकारी के पीछे हमारी वर्तमान शिक्षा-पध्दति और सामाजिक व्यवस्था कारण है। आज लाखो पढे-लिखे युवक रोजगार के लिए घूमते हैं। नगरों और महानगरों की ओर बढते हैं, उनका भविष्य अंधःकारपूर्ण रहता है। निराशा की गर्त में धँसकर वे कभी-कभी विद्रोही भी बन जाते हैं। आज गाँवों, कस्बों, शहरों, महानगरों तथा झोपडपट्टियों में भी बेरोजगारी का जहर फैलता जा रहा है। पूरे राष्ट्र में बेकारी का यह उपद्रव बढता जा रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बेकारी निर्मूलन की दिशा में कोई प्रयत्न नहीं किये गये। इस लघु-शोध-प्रबन्ध में आलोच्य उपन्यासों में इस समस्या पर सोचने का प्रयत्न किया गया है।

शैलेश मटियानी के 'कबूतरखाना' - 1960 में गणपत रामा की बेकारी का चित्रण आया है। बेकारी के कारण गणपत रामा को अपनी बहन की देह-विक्रय से प्राप्त पूँजी पर पलना पडता है। इस बात पर कृष्णाबाई प्रकाश डालते हुए कहती है - 'कमा-कमा के गंगूबाई भाई के पेट भरती रही।'[68] गणपत रामा बेकार होने के नाते वह अपनी बहन की बिमारी का इलाज नहीं कर सका। अपनी बेकारी को पाटने के लिए गणपत रामा एक गुजराथी सेठ के पास नौकरी माँगते हुए कहता है - 'सेठजी, नौकरी मिलेगी?'[69] उसे पंद्रह रूपये माहवार की नौकरी मिलती है। इस अवसर पर उसे अपनी बहन गंगूबाई की याद आती है कारण गंगूबाई भी उसे प्रतिमास पंद्रह रूपये बेकारी के दिनों भेजती थी। गणपत रामा बेकारी से इतना मजबूर बन जाता है कि वह अपने बहन को वेश्या बनने से नहीं बचा पाता। गणपत रामा के भाँति इस माहौल में अनेक आवारा युवक हैं जो इस बेकारी के शिकंजे में भटक रहे हैं और अपने उदरपूर्ति के लिए छोटे-मोटे व्यवसाय करते हैं।

शैलेश मटियानी के 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' - 1969 में वीरेन्द्र तथा पंडित की बेकारी का वर्णन आया है। पंडित बेकारी से पीडित होकर खानसामा का पेशा अपनाता है। अर्थाभाव के कारण वे बिना टिकट रेल की मुसाफिरी करते हैं। वीरेन और पंडित दोनों भी बेकार युवक हैं। कुछ काम-धंधा पाने के लिए वे दोनों भी रेल-यात्रा करके बम्बई आते हैं। परंतु वे इतने बेकार है कि उन्हें टिकट निकालने के लिए भी पैसा नहीं हैं। टिकट-चेकर को देखते ही वीरेन्द्र-पंडित से कहता है - 'मैंने क्या कहा था तुझ से परदेश की जिंदगी पग-पग पर नई समस्या है, नया खतरा लेकर ही कटती है ---- लगता है अब टिकट चेकर आया। ---- मुझे भी फाँसी लगायेगा।'[70] बेकारी से पीडित होकर वीरेन्द्र अपना नसीब निकालने के लिए अल्मोडा से बम्बई आता है, वह निराशा से कहता है - 'सोचता हूँ यह भूले-भटके-सा चलना, यह दिशाहीन

यात्रा, यह अनिश्चित जीवन क्रम - भविष्य बडा धूँधला-धूँधला लगता है।'[71] बेकारी में वीरेन्द्र उज्ज्वल भविष्य के सपने देखता है। वह सपना देखता है कि - 'जुहू की बेंच पर बैठकर वह गाना गुनगुनाता है, निम्मी नामक एक पिक्चर बनानेवाली उससे मिलती है, उसे चाय पीने की विनती करती है और पिक्चर में भरती करवाने के लिए उसे अपनी गाडी में बिठलाकर ले जाती है।'[72] परंतु टिकट चेकर की आवाज सुनते ही उसका सपना टूट जाता है। बेकार युवक वीरेन की मनोदशा विक्षिप्त्त बन जाती है। वह अपनी हालत से मजबूर है, उसे होटल के वेटर साहब कहकर पुकारने के बाद वह खुद पर करूण का भाव दर्शाता हुआ कहता है - 'दोस्त तुम मुझे साहिब कहते हो, मैं साहिब दिखता हूँ तुम्हें? यह फटी पायजामा, यह गाढे का कुर्ता---।'[73] शिवाजी पार्क की दीवारों पर बैठकर अपनी लक्ष्यविहीन जिन्दगी पर सोचते हुए वीरेन उदास हो जाता है। उसे पुरूषार्थ दिखाने के लिए कोई भी क्षेत्र नहीं मिल रहा है, कोई आश्रय नहीं मिल रहा है। इस निराश्रित स्थिति में वह आत्महत्या की बातें सोचता है। वह कहता है - 'तो क्या इन खामोश बडी बिल्डिंगों, इन न टूटनेवाले बडे-बडे घरौंदे से सिर टकरा-टकराकर मर जाऊं?'[74]

बेकार स्थिति में फुटपाथ पर आश्रय लेनेवाले वीरेन को भगाते-भगाते भोसले हवलदार मेहरासाहब से कहता है - 'देखो मेहरासाहब, हिन्दुस्थान का जितना बेकार, लावारिस लोग है मुंबई का ही खिचडी खाने को आता है।'[75] बेकारी में वीरेन एक बेसहारा युवक की जिंदगी यापन करता है। इस असहाय हालत में एक झोपडपट्टी का गुण्डा (दादा) से मुलाकात होती है, वह उसे सहारा देता है और उसकी जिंदगी बरबाद होने से बचाने का प्रयास करता है। दादा के आश्रय से बेकार युवक वीरेन नौकरी की तलाश करना चाहता है, वह कहता है - 'एक आधार मिल गया है। इस बीच प्रयास करके कहीं नौकरी-चाकरी ढूँढ लूँगा।'[76] स्पष्ट है कि एक बेकार व्यक्ति वीरेन यहाँ जिंदगी से अनेक मोडों से गुजरता हुआ देखने को मिलता है।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' - 1981 में पोपट और जब्बार इन दो पात्रों के माध्यम से बेकारी की तरफ इशारा किया है। ये दो पात्र जवान और शक्तिमान होने पर भी अशिक्षा के कारण उन्हें कहीं पर भी नौकरियाँ नहीं मिलती है। उदरपूर्ति के लिए वे छोटी-बडी चोरियाँ करते हैं, तस्करी करते हैं। पोपट तो अपनी पत्नी मैना को बेकारी से तंग आकर वेश्या-व्यवसाय की तरफ मूडा लेता है और उसके द्वारा कमाये हुए पैसों पर उदरपूर्ति करता है। वह मेहनत करने की अपेक्षा तस्करी करने का सपना देखता है और एका-एक धन्नासेठ बनने की चाह रखता है। इस झुग्गी-बस्ती में स्थित आवारा युवक भी बेकारी का शिकार है।

भीष्म साहनी के 'बसंती' - 1980 में लेखकने बेकारी समस्या पर नहीं सोचा है। इस बस्ती में जो लोग रहते हैं वे परंपरागत अपने अपने छोटे-छोटे व्यवसाय करके अपने विकास की बाते सोचते हैं। अपनी झोपडपट्टी को विकसित बनाकर अस्थिर जिंदगी को स्थिर जिंदगी में परिवर्तित करना चाहते हैं। विभिन्न प्रांतों से आये - हुये ये श्रमिक लोग श्रम को ही पूँजी मानकर उदरपूर्ति के साधन जुटाते हैं, इसलिए यहाँ इस समस्या का उल्लेख नहीं आया है।

निष्कर्ष :-

आलोच्य उपन्यासों में चित्रित बेकारी की समस्या पर सोचते समय यह स्पष्ट होता है कि यह अशिक्षित लोगों की बेकारी है। केवल 'बोरीवली से बोरीबन्दर' तक का वीरेन शिक्षित नजर आता है। आलोच्य उपन्यासों में झुग्गी-बस्तियों में बसे हुए अशिक्षित लोगों की बेकारी का ही चित्रण आया है। बोरीवली से बोरीबंदर तक उपन्यास में ही इस समस्या का विस्तार से चित्रण आया है, बाकी उपन्यासों में केवल मात्र संकेत ही दिये है। बढते हुए औद्योगिकरण के परिणाम स्वरूप इस समस्या में भी बढौत्री हुई है। बेकारी से पीडित होकर इन झुग्गी-झोपडियों के लोग कुकर्म की तरफ मुड जाते हैं। झोपडपट्टियों में यह समस्या आधिक तीव्र लगती है। इससे ये लोग कुंठित और मजबूर लगते है। आज सरकार स्वयं-रोजगार के लिए कर्ज उपलब्ध करा देकर समाजकल्याण तथा सेवानियोजन केन्द्रों को गतिशील बनाकर इस समस्या पर हल ढूँढना चाहती है। आलोच्य उपन्यासों में मात्र अपनी बेकारी को कम करने के लिए इस प्रकार के उपायों का कहीं पर भी उल्लेख नहीं आया है।

(9) दरिद्रता तथा अभावग्रस्तता की समस्या :-

दरिद्रता मानव जीवन के लिए एक अभिशाप माना जाता है। जहाँ दारिद्रय होता है वहाँ मजबूरी का जन्म होता है। दरिद्री व्यक्ति अपने स्वाभिमान को खो देकर जिंदगी से समझौता करता है। जीवन के हर मोड पर अपनी गिड-गिडाहट को प्रस्तुत करता है। आलोच्य उपन्यासों में दिल्ली, बम्बई जैसे महानगरों में बसी हुई छोटी-छोटी झुग्गी-बस्तियों के दारिद्रय का यथार्थ चित्रण किया है। इन झुग्गी-बस्तियों में चारों तरफ अभावग्रस्तता का अंधियारा देखने को मिलता है। कभी बेकारी जन्य दारिद्रय तो कभी श्रम की महत्ता के अभाव में दारिद्रय यहाँ देखने को मिलता है। इन जनजीवन के दारिद्रय को देखने के पश्चात इन झुग्गियों का कठोर यथार्थ हमारे सामने आता है।

शैलेश मटियानी के 'कबूतरखाना' - 1960 में गणपत रामा के माध्यम से दरिद्रता और अभावग्रस्त जिन्दगी के दर्शन हमें होते हैं। भूलेश्वर की बस्ती में गणपत रामा जैसे अनेक

दुर्भागी लोग रहते है जो दरिद्रता से पीडित होते हैं। इस बस्ती में अपने दारिद्रय को और अभावग्रस्तता को सुलझाने के लिए गंगाबाई सईदन, कुलसुम आदि स्त्रियाँ देह विक्रय का काम करती हैं। शराब पीकर गणपत रामा हवलदार को अपने दरिद्रता का परिचय करा देते हुए कहता है - 'आक्खा दिवस सेठानी कूँ मस्का लगाता---- आक्खा दिवस कुतरा का माफिक पूँछ कू '---' से लगाता है, --- पीछू जाके साला पंधरा मिलता हे। साला अपन घाटी मराठी रामा लोग का भी कोई नौकरी है? कोई जिंदगी है?'[77] गणपत रामा ने यहाँ पर अपने गरीबी पर खुलकर प्रकाश डाला है। इस माहौल की अभावग्रस्तता के कारण नारी देह खिलौने की तरह बाजार में बिकता है। इन्सान की इन्सानियत समाप्त होती हे। विवशता बढ जाती है, इस पर प्रकाश डालते हुए इस उपन्यास में लिखा है - 'जो अति निर्धन हैं वे विवश हैं अपनी माँ-बहनों की अस्मत की रखवाली उनसे नहीं होती है। भाई इतना मजबूर होता हे कि बहन को वेश्या बनने से नहीं बचा पाता।'[78] इसी तरह यहाँ दरिद्रता के सामने मानवीयता के सारे नाते-रिश्ते अपवित्र और असम्बध्द बने हुए देखने को मिलते है। आर्थिक असमानता के कारण इस झुग्गी-झोपडियों में दारिद्रय की सीमा-रेखाएँ बढती हुई दिखाई देती है। इस बस्ती की वेश्याओं के भाव आर्थिक अभाव के कारण आटा-चावल की तरह बँधे हुए होते हैं। महानगरीय झुग्गी-झोपडियों की दरिद्रता पर प्रकाश डालते हुए गणपत रामा कहता है - 'येच मुंबई में हट्टा-कट्टा गरीब लोग भीख माँगने को - भीख ऊपर भी गुजर नहीं होने को, पीछू कच्ची-कच्ची उमर का छोकरी लोग पील-हाऊस, कमाठीपुरा, फारस रोड आबाद करती, कच्ची-कच्ची उमर का छोकरा लोग या तो दारू सप्लाई करने को ----।'[79]

यहाँ गणपत रामा ने दुर्दैव के शिकार इन दरिद्र लोगों की तस्वीर पाठकों के सामने हु-ब-हु पेश करने का प्रयत्न किया है।

शैलेश मटियानी के 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' - 1960 में अपने अभाव को नष्ट करने के लिए गंगूबाई नर्मदाबेन के घर दाई-सर्वहारा का काम करती है। इस उपन्यास में एक उपेक्षित इलाके में स्थित गरीबी का चित्रण किया हे। वहाँ गरीबी इतनी हे कि बाप बेटी बेचने पर मजबूर होता है। इस तरह भयावह दरिद्रता को यहाँ चित्रित किया है।

शैलेश मटियानी के 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' - 1969 में वीरेन की दरिद्रता का चित्रण मिलता है। वह अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए बम्बई आ जाता है। यहाँ जीविकोपार्जन की उसकी समस्या बहुत जटिल बन जाती है और उसका जीवन बोरीवली से बोरीबंदर तक के बीच रेल्वे-स्टेशनों में ही कटने लगता है। वीरेन का बिगर-टिकट रेल-यात्रा करना, फिल्म सृष्टि में पदार्पित होने का सपना देखना, फुटपाथ पर भी उसे जगह न मिलना, दारिद्रय के कारण

निराश होकर उसके द्वारा आत्महत्या की बातें सोचना मजदूरों का पैसों के लिए अपने मालिक से झगडा करना, गरीबी से तंग आकर नारियों का वेश्या-व्यवसाय करना आदि कई घटनाएँ इस बस्ती के दारिद्रय पर प्रकाश डालती हैं।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' - 1974 में झुग्गी-झोपडियों की गंदगी पर छायी हुई दारिद्रय की और अभावग्रस्तता की जिंदगी प्रस्तुत की है। यहाँ अपने दारिद्रय से पीडित होकर मैना, हसीना, नयना, बशीरन, मरियम, चंद्री, नूरन, सुभद्रा आदि नारियाँ वेश्या-व्यवसाय का मार्ग अपनाती हैं। मैना की दरिद्रता पर प्रकाश डालते हुए लेखक कहते है - 'मुँह पीले, ओठ सूखे, एक पाव-रोटी --- दो टुकडे। खाते हैं दोनों। पीते हैं पानी। एक कप चाय के दो भाग करते हैं यहाँ पोपट और मैना के दारिद्रय और अभावग्रस्तता का चित्रण मिलता है। इन झुग्गि-बस्तियों में सदैव दारिद्रय पलता है। भूख की आग बुझाने के लिए लोगों के छोटे-छोटे लडके होटल के पिछे डिब्बे के पास फेंके गये जूठन पर टूट पडते हैं। वहाँ जूठन खाते आये हुए कुत्तों को पत्थर मार-मारकर भगाते हैं। इन लोगों का दारिद्रय भयंकर होता हे। लेखक ने कहा है - 'कुत्ते भी दूर से चक्कर काट रहे हैं कौए भी उड-उडकर वहाँ आकर बैठते हैं। बच्चे पुरानी जूठन तलाशते हैं। उन्हें कुछ भी नही मिलता, न हड्डी, न पाव-रोटी का छिलका।'[80] भूख से तडपनेवाले इस बस्ती के बच्चे बीते दिनों की याद करते हुए कहते हैं - 'एक दिन राजू को मुर्गे की पूरी टांग मिली थी।' इस झुग्गी-बस्ती के बच्चे होटल का पिछला दरवाजा खुलते ही दौड पडते हैं, कुत्ते भी दौड पडते हैं, कौवे भी आ जाते हैं, मक्खियाँ भी भिनभिनाती है, छोटे-छोटे बच्चे कुत्तों को पत्थर मारकर हटाते हैं - '---- चावल --- रोटी ---- पाव ---- हड्डी ---- डाल ---- मछली ---- सडा हुआ ---- बदबू।'[81] यहाँ लेखक ने दारिद्रय के कारण ये बच्चे बदबूदार जूठन पर कैसे आ टपकते हैं इसका चित्रण किया है। दारिद्रय के कारण भूख से व्याकूल मैना रोती है उसके झोपडे में न पानी है, न खाना है इस हालत से मार्ग निकालने के लिए थके और मैले जिस्म को सजाने लगती है। झुग्गी-झोपडियों में पेट के लिए आवारा छोकरे भीख माँगते। चारों तरफ भीख माँगनेवालों की कतारे लगी रहती हैं। अंधें, लँगडें, कोढी, राम के नाम पर झोलियाँ फैलाते हैं। एक आदमी चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है - ताली बजाने के लिए कह रहा है ये मेरा चार साल का छोकरी इतना बडा पत्थर उठायेगा पेट के वास्ते।'[82] कोढी रोजी को बिमारी पर इलाज करने के लिए भी पैसा नही है, वह कहती है - 'एक आदमी मेरे कू बोला --- तू परेल के हास्पिटल में जा बोलके। पण पैसा किधर इतना दूर जाने का वास्ते।'[83] लेखक ने जब्बार के रूप में भी दरिद्रता और अभावग्रस्तता पर प्रकाश डाला है। जब्बार को पैसे देने के लिए रोजी स्वयं भीख माँगती है। इस दरिद्रता और अभावग्रस्तता को

मिटाने के लिए एक तस्कर के घर में घुसकर चोरी करते है। जब्बार की पत्नी हसीना रो-रोकर रोजी से कहती है - 'दो-दो-तीन-तीन दिन खाना नहीं मिला मेरे कू।'[84] इससे स्पष्ट है कि ये लोग भयावह दारिद्रय से गुजर रहे हैं। इन लोगों की दरिद्रता के कारण पोपट जैसा व्यक्ति तस्करी के व्यवसाय में जुड जाता है और अंत में मर जाता है और मरने के बाद उसका मुर्दा अस्पताल के मुरदाघर में दाखिल किया जाता है। दारिद्रय की आँच के कारण पोपट की लाश को अपनी काबू में लेकर उनका क्रिया-कर्म करने के लिए मैनाबाई के पास पैसे नहीं। बशीरन मैनाबाई के दरिद्रता की जानकारी देती हुई खाली वर्दीवाले से कहती है - 'भैय्या। हम लोग भोत गरीब हैं ---- तुम इसका ठीक काम करवा देंगे? ---- अल्ला तुम्हारा भला करेंगा ----- भोत दुवा देंगा हम लोग।'[85]

भीष्म साहनी के 'बसन्ती' - 1980 में दारिद्रय के कारण बसंती का बाप चौधरी अपनी बेटी बसंती को लँगडे दर्जी बुलाकी को बेचने का प्रयत्न करता है, बुलाकी के साथ उसकी शादी भी करवाना चाहता है। बदले में बारह सौ रूपया प्राप्त करना चाहता है। इस पर प्रकाश डालते हुए बसंती कहती है - 'हमारा बापू बेटियाँ बेचता है, मेरी बडी बहिन का ब्याह भी गाँव में किसी बूढे के साथ कर दिया। उससे आठ सौ रूपये लिए। वह गाँव में बैठी घास छिलती है।'[86]

निष्कर्ष :-

आलोच्य उपन्यासों के लेखकों ने झुग्गी-बस्ती में बसे हुए निम्न स्तर के सर्वहारा वर्ग को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। ये लोग भारत के कोने-कोने से आकर बम्बई में या दिल्ली में रहकर अपनी किस्मत को परिवर्तित करना चाहते हैं। तरह-तरह के संघर्ष बर्दाश्त करते हैं, परंपरागत धन्धें, व्यवसाय करते हैं। उदरपूर्ति के लिए तस्करी, पाकिटमारी, डकैती, चोरी करते हैं। भूख से बेहाल होकर अवैध धन्धों की कचोट में फँस जाते हैं। इन बस्तियों की नारियाँ देह-विक्रय करती है, परन्तु इन लोगों का दारिद्रय कम नहीं होता। किस्मत के मारे ये लोग हमेशा अभावग्रस्तता का शिकार होते हैं। आलोच्य उपन्यासों के लेखकों ने इन झुग्गियों में फैली हुई दरिद्रता तथा अभावग्रस्तता का गहराई से चित्रण किया है।

(10) अवैध यौन सम्बन्धों की समस्या :-

मनुष्य यौन सम्बन्धों का भूखा रहता है। वेश्या-समस्या, अनमेल विवाह, विधवा विवाह आदि में यौनाचार के नये-नये आयाम उद्घाटित किये हैं। इसके कारण अवैध यौन सम्बन्धों का निर्माण होता है। अतृप्त कामवासना विकृत यौन चेतना, यौन अतृप्ति आदि के कारण यौन सम्बन्ध प्रस्थापित होते हैं। समाज में ये अवैध यौनसम्बन्ध विवाहबाहय यौन सम्बन्ध होते हैं। कभी पुरूष

के रूप में तो कभी स्त्री के रूप में ये सम्बन्ध प्रस्तुत किये जाते हैं। साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में अवैध यौन सम्बन्धों पर गहराई से चिंतन किया है।'[87] औद्योगिकरण की हवा ने यौन सम्बन्धों पर अधिक प्रकाश डालने का काम किया है। आलोच्य उपन्यासों में इस समस्या पर कहाँ तक सोचा है यह हम देखेंगे -

शैलेश मटियानी के 'कबूतरखाना' - 1960 में कासम-चमेली अवैध सम्बन्ध, गणपत-सईदन, गणपत-कुलसुम, गणपत-सेठानी आदि अवैध सम्बन्धों का चित्रण लेखक ने किया है। गणपत रामा शराब की नशा में इन सम्बन्धों में प्रकाश डालता है। चमेली द्वारा कासमभाई का दिल तोडकर अन्य किसी के साथ गोलपीटा में जाकर भर्ती होकर अवैध धन्धा शुरू करने पर कासमभाई कहता है - 'जालिम जान देती थी, यार, मेरे ऊपर - पर बीच बाजार में बनारसी जूता मार के चली गई।'[88] गणपत कासम और चमेली के इस अवैध सम्बन्धों से क्षुब्ध होता है और सभी औरत जात को गाली देना चाहता है परंतु उसे अपनी माँ और बहन की याद आती है जिन्होंने उसे मुसीबतों से छुडाया था। गणपत रामा जैसे फुटपाथ पर जिंदगी यापन करनेवाले लोगों का धनिकों के औरतों के साथ भी अवैध सम्बन्ध होता है इसका जिक्र भी कबूतरखाना में आया है। सेठानी और गणपत के सम्बन्ध स्थापित होने पर गणपत कहता है - 'हमेरी समझ में नहीं आया काहे कू सेठानी इतना नरम बिस्तर और सेठ को छोडकर इधर हमेरी बगल में चिकटता है? हम सोचता होता, कि सेठ लोगों के घर में भी कैसा-कैसा पोल-पट्टी चलता है।'[89] यहाँ लेखक ने गणपत रामा के सेठानी के साथ के सम्बन्धों पर प्रकाश डाला है। गणपत के दिल में इन सम्बन्धों से दिलचस्पी बनी रहती है जैसे - 'सोने को औरत हो, खाने को बिर्याणी और देखने को अंग्रेजी पिक्चर।'[90] इस उपन्यास में नगीनभाई सेठ की सेठानी और गणपत सम्बन्ध दिखाये हैं। गणपत और उनके दोस्त पटवर्धन की सेठानी के भी अवैध संबंध हैं। अपने इन सम्बन्ध को आबाद रखने के लिए सेठानी अपने पति को जला देने तक पहुँचती है। पुलिस आनेपर वह बताती है - 'हूँ सँवारे ----- ऊघो थई गयोछे।'[91] लेखक ने गणपत और यशोदाबेन के सम्बन्ध भी दिखाये है। यशोदाबेन गणपत से कहती है - 'तुम्हें क्यों चिंता है? तुम्हारे लिए तो मैं तुम्हारी ही हूँ।'[92] यहाँ गणपत के कुलसुम, सईदन के साथ भी सम्बन्ध दिखाई देते हैं।

शैलेश मटियानी के 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' - 1960 में रामदुलारे की गर्भवती पत्नी रामी को मजबूरी के कारण एक पठाण के साथ अवैध सम्बन्ध रखने पडते है। लेखक ने इन सम्बन्धों का विस्तार से चित्रण नहीं किया है। केवल संकेत मात्र दिये हैं।

शैलेश मटियानी के 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' - 1969 में कलिया-चंदा, शारदा-रामखेलावन, अलीबक्श-चंदा, गणपत-नंदा, वीरेन-रेवा आदि अवैध सम्बन्धों का चित्रण देखने को

मिलता है। मुँगरापाडा में रहनेवाले कलीहुसैन (कलिया) और चंदा के अवैध सम्बन्ध यहाँ चित्रित किये हैं। लखनौ की चंदा को कलीहुसैन द्वारा नाना सब्जबाग दिखाकर हीराइन बनाने के लिए बम्बई लाया गया। कलिया उससे कहता है - 'जब तुम हीरोइन बन जाओगी, मैं डायरेक्टर प्रोडयूसर बन जाऊँगा ---- अभी तो तुम्हारी कच्ची उमर है।'[93] बम्बई में आकर कलिया चंदा को लेकर तंदूरी रोटियाँ सेंकनेवाले गबरू चाचा के यहाँ ठहरता है। कलिया अपने पेट के लिए दिन भर स्टुडिओं की खाक छानता है। कलिया ने मस्जिद के साये में चंदा को अपनी बीबी कबूल किया परंतु उसे अपनी बीबी की तरह रख नहीं सका। इस उपन्यास में अलीबख्श और चंदा के भी सम्बन्ध दिखाये हैं। वीरेन्द्र और रेवा के सम्बन्धों में स्वार्थ की बदबू नहीं आती है। दुर्दैव की शिकार रेवा वीरेन के प्रति आकर्षित होती है और इन दोनों के यौन सम्बन्ध स्थापित होते हैं। गणपत-नंदा के अवैध संबंध पर यहाँ केवल संकेत मात्र किया है।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' - 1974 में लेखक ने रोजी के अनेक मर्दों के साथ, दूधवाला और मंगला, हीरा और टॅक्सीवाला, चंदरी-बोटवाला (हमाल) बाबूभाई-काली लडकी, सुभद्रा-नारायण घाडगे, रोजी-चंदू आदि अवैध सम्बन्धों का चित्रण मुरदाघर में करके लेखक ने अभावग्रस्तता में भी ये मानवीय संबंध कितने कोमल होते हैं इस पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत उपन्यास में रोजी नामक रंडी औरत के अनेक मर्दों के साथ संबंध आते हैं फिर भी वह अपने मर्द के बारे में सोचती है - 'उसका भी कभी मर्द था, पहला चला गया छोडकर --- दूसरा आया शादी नहीं की थोडे दिन का साथ निकाल दिया उसने रोजी को। --- फिर तीसरा ---- फिर चौथा --- फिर जिसने खिला दिया खाना ---- हो गया रोजी का मर्द ---- हर हप्ते के बाद --- हर रात ----नया मर्द।'[94] वास्तव में रोजी चंदू की तलाश में है। जिस चंदू ने उसके साथ तस्वीर खिंचकर, उसका मर्द बनने का अभिवचन दिया था रोजी जाते-जाते जब्बार को चंदू की तलाश करने को कहती है। वह कहती है - 'ओ घाटी के छोकरे कू मिलना। र ओइ चंदू दो फोटो निकाला था मेरे साथ बैठ के, मेरे पास है वो फोटो, उसकू आने कू बोलना। मैं रस्ता देखती उसका। बोलना मेरे कू ले के जा इधर से।'[95] इन झुग्गियों में बसनेवाली नारियों के ग्राहकों की अपेक्षा अन्यत्र भी प्रेम-संबंध रहते हे दूधवाला और मंगला के बीच इसी प्रकार का सम्बन्ध है। दूधवाले भैया से मंगला छेडखानी करती है, उसे साइकिल सीखाने को कहती है, वह मंगला को डाँटता भी है, वह यहाँ से जाना चाहता है। मंगला उसे कल रात आने को कहती है। जाते समय चार-आठ आने देने को कहती है। हाथ डालकर उसके जेब से पचास पैसे निकालती है। हीरा और टैक्सीवाला के भी ऐसे ही संबंध है तो अर्थ केन्द्रित लगते है चंदी और बोटवाला हमाल के भी

अर्थकेन्द्रित अवैध संबंध देखने को मिलते हैं। बाबूभाई और काली लडकी के भी यहाँ अवैध सम्बन्ध चित्रित किये हैं। काली लडकी लैला को जेल में वह कैसे आयी इसका कारण विषद करती हे और जमानत के लिए बाबूभाई का जिक्र करती है। वह कहती है - 'चोरी के माल के बदले बाबूभाई उसे सिर्फ एक वखत का खाना देता था। बाबूभाई उसके साथ सोता तो था परंतु दो वखत का खाना नहीं देता।'[96] बाबूभाई-काली लडकी के संबंध अर्थकेंद्रित है। बाबूभाई के प्यार का चित्रण करते हुए काली लउकी लैला से कहती हे - 'एक बार भोत भूखी थी मैं, वो सोने का वास्ते आया, मैं बोली कि नई मैं भूखी हूँ। पण उसकू कइसा तो मालम चल गया वो टैम उठाया मेरे कू ---- ले जाके पाव-रगडा खिलाया।'[97] बाबूभाई के प्रति उस काली लडकी के मन में प्रेम हे इसलिए वह उसकी तलाश में लगी है। यह काली लडकी तारा है जो पुलिसों द्वारा हवालात में बंद हो चुकी थी, उस समय जमानत के लिए उन्होंने बाबूभाई के पास सय्यद द्वारा समाचार भेजा था। बाबूभाई का समाचार सुनाते हुए तारा को (काली लडकी को) सय्यद कहता है - 'मैं उसकू बोला कि तारा कू पुलिस लोग पकडा ---- तो वो बोला कि मैं नइ जानता कोई तारा-वारा कू।'[98] बाबूभाई का अवैध संबंध तारा से होने पर भी उन्होंने आपत्ती में तारा (काली लडकी) का साथ नहीं निभाया। यहाँ भी अर्थकेन्द्रित अवैध यौन संबंधों पर प्रकाश डाला है। सुभद्रा और नारायण घाडगे के सम्बन्ध भी इस तरह के ही है। दुबली पतली औरत सुभद्रा कोठरियों में घुसकर भत्तेवालों से पोस्टकार्ड लाकर देती है। वह बेसहारा निराश्रित है। जमानत के लिए वह अपना सम्बन्ध भी नारायण घाडगे को पोस्टकार्ड लिखकर जमानत के लिए आने की बिनती करती है परन्तु उसका अता-पता पोस्टकार्ड पर लिख नही सकती। वह फुटपाथ पर ही सोता था इसलिए उसके पास यह पत्र कैसे पहुँचेगा इसकी समस्या उसके सामने निर्माण होती है। 'नारायण घाडगे बेकार है, उसका निश्चित कोई पता नहीं है। वह कभी हमाली करता है तो कभी बढरी का काम करता है तो कभी पाकिटमारी करता है।'[99] सुभद्रा नारायण रामभाऊ घाडगे के पत्र पर बोरीलेन का फुटपाथा ---- भीमजी भाई बनिया का दुकान का सामनेवाला जगा ---- कमाठीपुरा नाका।'[100] यह पता लिखती है परंतु नारायण घाडगे कभी भी उसे फिर नहीं मिला। सुभद्रा मात्र उसका इंतजार करती रही।

इस तरह लेखक ने यहाँ विविध प्रकार के अवैध सम्बन्धों का चित्रण करके अर्थकेन्द्रित अवैध मानवीय संबंधों पर प्रकाश डाला है।

निष्कर्ष :-

आलोच्य उपन्यासों के लेखकों ने अवैध सम्बन्धों के विविध पहलूओं पर अत्यंतिक सूक्ष्मता के साथ चिंतन किया है और यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि झुग्गी-झोपडी के अवैध यौन सम्बन्धों में अर्थकेन्द्रितता अधिक रहती है, इनमें स्वार्थ की बदबू रहती है। केवल बोरीवली से

बोरीबंदर तक' उपन्यास में चित्रित वीरेन और रेवा के सम्बन्धों में भावुकता श्रध्दा के दर्शन होते हैं। बाकी सभी सम्बन्ध अशिक्षित अभावग्रस्त लोगों के बीच होने के कारण इसमें स्वार्थ की मात्रा अधिक है। इन सम्बन्धों में विवाहबाहय सम्बन्ध, एक से अधिक पुरूषों से सम्बन्ध आदि चित्रण अधिक मात्रा में देखने को मिलता है।

निष्कर्ष :-

प्रस्तुत अध्याय में हमने झोपडपट्टी जनजीवन के समस्याओं के अंतर्गत वेश्या समस्या, पुलिस शोषण की समस्या, विस्थापन की समस्या, अवैध धन्धों की समस्या, अवैध संतान की समस्या, नशापान की समस्या, असाध्य बिमारियों की समस्या, बेकारीयों की समस्या, अवैध सम्बन्धों की समस्या आदि का चित्रण करके यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि अभावग्रस्त झोपडपट्टी जनजीवन में ये समस्याएँ वहाँ के जनजीवन को पीडित कर रही हे। हमने यहाँ 'कबूतरखाना,' 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई,' 'बोरीवली से बोरीबंदर तक,' 'मुरदाघर' और 'बसंती' इन पाँच उपन्यासों में चित्रित समस्याओं का जिक्र प्रस्तुत किया है। रेल-लाईन की ढलान पर, गंदी नालियों के किनारे बसी हुई इन झोपडियों में जीवन यापन करनेवाले लोग बहुत निम्न स्तर की जिंदगी जिते हैं। अभावग्रस्त जीवन को पाटने के लिए अवैध धंधें को अपनाते हैं पुलिसों के आतंक से आतंकित होते हैं। भविष्य के उज्जवल सपने देखते-देखते मौत के घाट उतर जाते हैं।

शहर के उच्छिष्ट पर पली इन झुग्गियों की गंदगी में ये लोग अभावग्रस्त कीडे-मकौडे की भाँति जीवन-यापन करते हैं। उनके आपसी संबंध अर्थकेन्द्रित होते हैं। उदरपूर्ति के लिए तस्करी, चोरी, पाकिटमारी करते हैं जिससे महानगरों की मानसिकता भी बिगड जाती है। यह जनजीवन विविध प्रकार की समस्याओं से पीडित है। सरकार इन समस्याओं की ओर अधिक नहीं सोच रही है। महाराष्ट्र सरकार ने झोपडपट्टी निर्मूलन कार्यक्रम बनाकर इस दिशा में अच्छा कदम उठाया है। लगता है कि सरकार के क्रियाशील प्रयत्न के कारण ही इस जनजीवन की समस्याएँ कम हो सकती है।

इन झुग्गियों में नारी जीवन को यातना देनेवाली वेश्या समस्या प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी है। आर्थिक आधारहीनता, विशिष्ट मनोवृत्ति के कारण आज यह समस्या गंभीर बनती जा रही है। यह समस्या स्वस्थ समाज और प्रगतिशील राष्ट्र के लिए एक कलंक हे। उसी के फलस्वरूप साहित्य और समाज के स्वस्थ सम्बन्ध के साहित्यकारों की समाजोन्मुख चेतना का वेश्या-समस्या जैसी गंभीर समस्या की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक लगता है। इस समस्या की विकरालता को सरलता के साथ आलोच्य उपन्यासकारों ने चित्रित किया है। इस समस्याओं पर सोचते हुए इन लेखकों ने मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया है।

इन लोगों का पुलिस शोषण का रवैय्या हमेशा आतंक जताता है। उन्हें मारना-पीटना, उनकी झुग्गियाँ तोडना, उन्हें गिरफतार करना, उनसे रिश्वत लेना आदि कई कुकर्म पुलिस करती है। आलोच्य उपन्यासकारों ने पुलिस के विरोध में और झुग्गी-झोपडीवालों के पक्ष में अपनी राय प्रस्तुत की है। और इन लोगों पर पुलिसों द्वारा स्थापित आतंक को अयोग्य घोषित करने का प्रयत्न किया गया है।

विस्थापन की समस्या तो इन लोगों को बार-बार सताती है। अवैध जगह पर बनायी गयी झोपडियाँ पुलिसों द्वारा तोडी जाती है और इन्हें विस्थापित किया जाता है।

ये लोग उदरपूर्ति के लिए कच्ची शराब बेचना, जुआ खेलना, तस्करी करना, पाकिटमारी करना, सट्टा खेलना, गुंडई करना, मारकाट करना, छोटी-मोटी चोरियाँ करना आदि अनेक अवैध व्यवसाय करते हैं जिनके कारण महानगरों के स्वास्थ्य में बिगाड आता है।

जहाँ तक अवैध संतान की समस्या है, इस समस्या को केवल मुरदाघर में ही चित्रित किया है। आज संतती प्रतिबंधक दवाओं के कारण यह समस्या झुग्गी-झोपडियों में भी नहीं रही है ऐसा लगता है।

झुग्गी-झोपडी जनजीवन में नशापान पर अधिक चिंतन किया है। ये लोग अपने दुःख को भुलने के लिए नशापान के आदती होते हैं। कच्ची शराब पीना, गाँजा, चरस के आधीन बनना इनका स्वभाव धर्म बन बैठा है। आलोच्य लेखकों ने इस समस्या पर भी अधिक मात्रा में सोचा है।

गंदगी में बसे हुए ये लोग अनेक रोगों के शिकार बन जाते हैं। गरमी, परमा आदि के शिकार बनकर जिंदगी के अंतीम क्षण गिनते हैं। इन उपन्यासों में शिक्षितों की बेकारी को अधिक चित्रित नहीं किया है। कारण झुग्गी-झोपडियों में अशिक्षित लोग ही अधिक होते हैं। केवल 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' में शिक्षित युवक वीरेन की बेकारी पर प्रकाश डाला है।

झुग्गी-झोपडियों में जहाँ अभावग्रस्तता लक्षित होती है वहाँ यौन सम्बन्धों के विविध आयाम दृष्टिगत होते हैं। आलोच्य उपन्यासकारों ने इन गरीब और अभावग्रस्त लोगों के विविध सम्बन्धों पर दृष्टिक्षेप किया है। इन उपन्यासों में अनमेल विवाहों की समस्या पर भी भीष्म साहनी ने 'बसंती' उपन्यास में संकेत दिया है। गुण्डई की समस्या पर 'मुरदाघर' तथा 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' इन दो उपन्यासों में सोचने का प्रयत्न किया है।

आलोच्य उपन्यासों में उपर्युक्त सभी समस्याएँ सफलता के साथ, यथार्थता के साथ चित्रित की हैं।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ. वाय. बी. धुमाळ - 'साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यास का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन' - (1960-1980), पुणे विश्वविद्यालय की पीएच्.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध, (अप्रकाशित), 1985, पृ. 184
2. प्रा. नंदकुमार रानभरे - 'देवेश ठाकुर के उपन्यासों में चित्रित महानगरीय समस्याएँ : एक अनुशीलन' शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापूर की एम्.फिल. उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध (अप्रकाशित), 1990, पृ. 79
3. शैलेश मटियानी - 'कबूतरखाना', आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1960, पृ.16
4. वही, पृ. 21
5. वही, पृ. 23
6. वही, पृ. 21
7. प्रेमकुमारी सिंह - 'शैलश मटियानी के आँचलिक उपन्यास', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1992, पृ. 41
8. शैलेश मटियानी - 'बोरीवली से बोरीबंदर तक', आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1969, पृ. 5
9. वही, पृ. 53
10. वही, पृ. 54-55
11. वही, पृ. 79
12. वही, पृ. 95
13. वही, पृ. 141
14. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - 'मुरदाघर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण 1981, पृ.8
15. वही, पृ. 9
16. वही, पृ. 9
17. वही, पृ. 10
18. वही, पृ. 10
19. वही, पृ. 12
20. वही, पृ. 112
21. वही, पृ. 17
22. वही, पृ. 72
23. वही, पृ. 133

24. डॉ. वाय.बी. धुमाळ - 'साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन - (1960-1980)', पुणे विश्वविद्यालय की पीएच्.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध (अप्रकाशित), 1985, पृ. 188

25. शैलेश मटियानी - 'कबूतरखाना', आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं.1960, पृ. 9

26. शैलेश मटियानी - 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक', आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1969, पृ. 34

27. वही, पृ. 35

28. वही, पृ. 35

29. वही, पृ. 51

30. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - 'मुरदाघर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, ति.सं. 1981, पृ. 9

31. वही, पृ. 9

32. वही, पृ. 41

33. वही, पृ. 41

34. वही, पृ. 43

35. वही, पृ. 177

36. भीष्म साहनी, 'बसंती', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं.1982, पृ. 13

37. वही, पृ. 39

38. वही, पृ. 39

39. वही, पृ. 10

40. वही, पृ. 11

41. शैलेश मटियानी - 'कबूतरखाना', आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1960, पृ. 48

42. शैलेश मटियानी - 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक', आत्माराम एण्ड सन्स, प्र.सं.1969, पृ.31

43. वही, पृ. 40

44. वही, पृ. 44

45. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - 'मुरदाघर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं.1981, पृ. 10

46. वही, पृ. 20

47. वही, पृ. 28

48. वही, पृ. 54

49. वही, पृ. 91

50. डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर, 'हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन (1920-1947)', कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, प्र.सं. 1960, पृ. 217

51. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - 'मुरदाघर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं.1981, पृ. 26

52. वही, पृ. 121

53. वही, पृ. 123

54. वही, पृ. 133

55. डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर - 'उपन्यास : स्थिति और गति', पुर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1977, पृ. 406

56. शैलेश मटियानी - 'कबूतरखाना', आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1960, पृ. 5

57. वही, पृ. 1

58. वही, पृ. 3

59. शैलेश मटियानी - 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक', आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1969, पृ. 56

60. वही, पृ. 91

61. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - 'मुरदाघर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं.1981, पृ. 10

62. वही, पृ. 125

63. वही, पृ. 163

64. भीष्म साहनी - 'बसन्ती', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं.1982, पृ. 14

65. शैलेश मटियानी - 'कबूतरखाना', आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं.1960, पृ. 21

66. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - 'मुरदाघर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं.1981, पृ. 15

67. वही, पृ. 112

68. शैलेश मटियानी - 'कबूतरखाना' आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1960, पृ. 23

69. वही, पृ. 28

70. शैलेश मटियानी - 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक', आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1969, पृ. 1

71. वही, पृ. 3

72. वही, पृ. 10

73. वही, पृ. 25

74. वही, पृ. 31

75. वही, पृ. 35

76. वही, पृ. 73

77. शैलेश मटियानी - 'कबूतरखाना', आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं.1960, पृ. 3

78. वही, पृ. 67

79. वही, पृ. 93

80. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - 'मुरदाघर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं. 1981, पृ.32

81. वही, पृ. 33

82. वही, पृ. 50

83. वही, पृ. 54

84. वही, पृ. 166

85. वही, पृ. 203

86. भीष्म साहनी - 'बसन्ती', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं.1982, पृ. 37

87. सं. डॉ. वचनदेव कुमार 'अनुवाक्' शोधपत्रिका, हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, अंक - 3, वर्ष - 1979, पृ. 26-30

88. शैलेश मटियानी - 'कबूतरखाना', आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1960, पृ. 10

89. वही, पृ. 32

90. वही, पृ. 53

91. वही, पृ. 59

92. वही, पृ. 85

93. शैलेश मटियानी - 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक', आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1969, पृ. 49

94. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित - 'मुरदाघर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं.1981, पृ. 15

95. वही, पृ. 172

96. वही, पृ. 91

97. वही, पृ. 99

98. वही, पृ. 109

99. वही, पृ. 104

100. वही, पृ. 107

000